गुरुवाणी

भाग-१

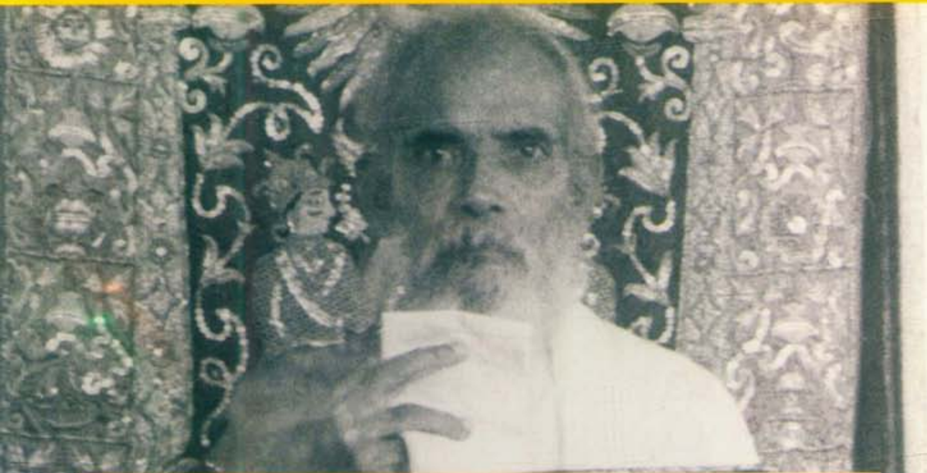

पूज्यपाद गुरुदेव मुनिराजश्री भुवन विजयान्तेवासी

मुनि जंबुविजय

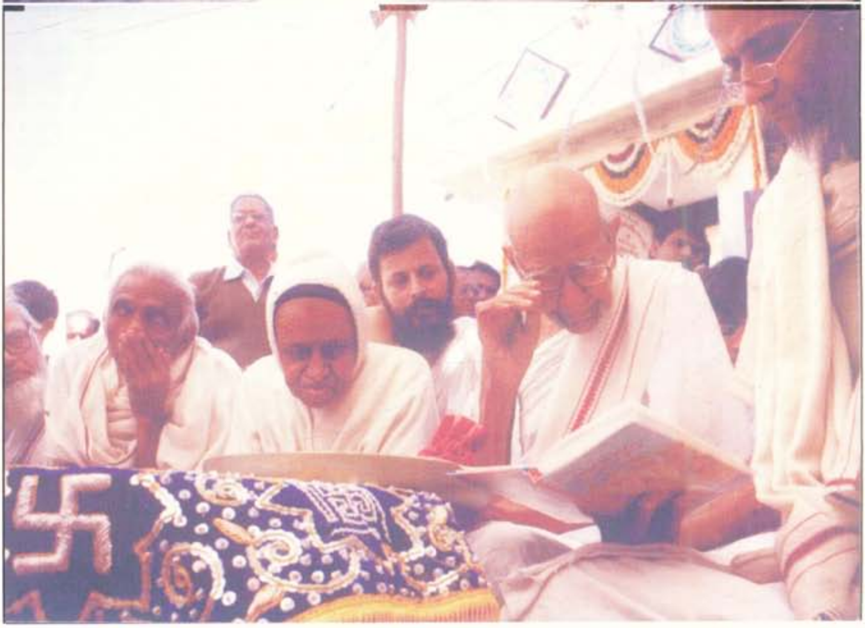

गुरुवाणी

भाग-१

विक्रम संवत् २०४१, समीग्राम के चातुर्मासान्तर्गत
दिये गये प्रवचन

प्रवचनकार

पूज्यपाद गुरुदेव मुनिराज श्री भुवनविजयान्तेवासी
मुनिराज श्री जम्बूविजयजी महाराज

सम्पादिका

साध्वी श्री जिनेन्द्रप्रभाश्रीजी

हिन्दी अनुवादक

साहित्य वाचस्पति महोपाध्याय विनयसागरजी

प्रकाशक

श्री सिद्धि-भुवन-मनोहर जैन ट्रस्ट, अहमदाबाद, (गुजरात)

प्रकाशक:-

श्री सिद्धि-भुवन-मनोहर जैन ट्रस्ट
अहमदाबाद (गुजरात)

मूल्य	:	सदुपयोग
हिन्दी आवृत्ति	:	प्रथम संस्करण
प्रति	:	१०००
©	:	प्रकाशकाधीन
प्रकाशन वर्ष	:	सन् २०१०, वि. सं. २०६७

प्राप्ति स्थान :-

१. अशोक भाई बी. संघवी,
c/o महावीर ट्रेडर्स
४१०, दवा बाजार,
शेफाली सेंटर के सामने, पालडी,
अहमदाबाद - ३८० ००७
फोन - ०७९-२६५७८२१४ / ९८२५०३७१७०

२. अजयभाई - अहमदाबाद - ९८२५०३०६५८

मुद्रक - मुद्रेश पुरोहित
सूर्या ओफसेट
आंबली, अहमदाबाद - ३८० ०५८
फोन - ०२७१७-२३०११२

प्रकाशकीय

पाँच वर्ष पूर्व जब इस गुरुवाणी का प्रकाशन किया गया उस समय हमने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि साहित्य के क्षेत्र में इस पुस्तक की इतनी माँग होगी। श्रावक वर्ग ही नहीं, इतर वर्ग के अनेक लोगों ने भी इस पुस्तक को चाहा है, सराहा है। अभी तक गुजराती भाषा की ५००० पुस्तकें भेंट स्वरूप दे चुके हैं। तृतीया आवृत्ति में आवश्यक परिमार्जन और परिवर्तन के साथ इस पुस्तक का गुजराती में तीन बार प्रकाशन हो चुका है। जिसके तीन भाग हैं।

हिन्दी भाषीय श्रावकों की अत्यधिक मांग होने के कारण हिन्दी में हमारा यह पहला प्रयास है, जिसे प्रकाशित करते हुए हमें खूब-खूब आनन्द की अनुभूति हो रही है। हिन्दी अनुवाद में भी इसके तीनों भाग प्रकाशित हुए हैं।

गुरुवाणी को पढ़कर, समझकर अवश्य अनुसरण करेंगे, इसी अभ्यर्थना के साथ -

प्रकाशक

अनुक्रमणिका

धर्म-जीवनशुद्धिः- १-७

* रे! इस संसार में सुख प्राप्त करना! १
* वर्ष नाम क्यों पड़ा? १
* मृत्यु एक मेहमान है २
* श्री वस्तुपाल की जागृति ३
* मातृभक्त कपिल ४

धर्मरहित चक्रवर्ती पद मुझे नहीं चाहिए:- ८-११

* कल्याणकारी धर्म ८
* आचरण का ज्ञान आवश्यक है ८
* कपिल का चिन्तन १०

हम कहाँ? १२-१५

* बेर के झाड़ की छाया के समान १२
* एक से डूबता है १२
* छः प्रकार का मानव होता है १३

ज्ञान का अञ्जनः- १६-१९

* परिवर्तन आवश्यक कहाँ है १६
* सत्संग की गंगा १६
* समझकर संस्कारित हो जाता है वह मानव १७

शासन-महासद्भाग्यः- २०-२३

* जीव शिव है २०
* यह जीवन कितना दुर्लभ है २०
* मानव जाति का इतिहास २१
* अर्थ नहीं, शासन प्राप्ति महासद्भाग्य २२

धर्म-भावशुद्धिः- २४-२९

* योग्यता के विकास पर सिद्धि २४
* शुद्धि प्रतिबिम्ब दिखाती है २४
* धर्म जीवन की पवित्रता २५
* बिन्दु की शक्ति २७
* धर्म किसे कहें? २७
* भाव का प्रभाव २८

प्रवासीः- ३०-३२

* सिकन्दर का अन्तिम संदेश ३०
* सूई को साथ लाना ३१
* परलोक ३२

रुडी ने रढियाळी रे:- ३३-३७

* करुणा का एक आयाम ३३
* थावच्चापुत्र ३३
* देशना ३४
* देशना के तीन बिन्दु ३४
* वाणी सुनने से वैराग्य का उद्भव ३५
* गुरुतत्त्व का महत्त्व ३७

धर्ममंगलः- ३८-४१

* मंगल की व्याख्या ३८
* पारसमणि ३९

श्रेष्ठ दवा:- ४२-४४

* किसकी उपासना ४२
* तप ही दवा ४२
* अट्ठम किसे कहते हैं? ४३
* अट्ठम का शुल्क ४३

जोड़ और तोड़:- ४५-४९

* नमस्कार ४५
* हृदय से प्रणाम ४६
* शुश्रूषा ४६

* नमस्कार में बाधक ४७
* कैसा भोजन करते हैं ४८

श्रवण परिवर्तन करता है:- ५०-५३
* जाना जरूर है ५०
* केवल श्रवण पानी होता है ५०
* चिन्तन ५१
* चिन्तन दूध है ५१
* निदिध्यासन अमृत है ५१
* पागलों के बीच समझदार ५२
* अमूल्य वाणी ४३

कितना मूल्य:- ५४-५७
* जीवन मूल्यवान है ५४
* दुर्लभ की प्राप्ति ५४
* श्रवण रुचि ५५
* सूचक स्वप्न ५६
* प्रदर्शन नहीं किन्तु दर्शन ५६
* देवगण असंख्याता कैसे ५७
* मूर्ति में साक्षात् दर्शन ५७

धर्म की योग्यता:- ५८-६०
* संसार में सब दुःखी हैं ५८
* गुणी ही धर्म के योग्य है ५९

अक्षुद्रता:- ६१-६६
* पित्त के समान ६१
* प्रथम अक्षुद्र गुण-वर्णन ६१
* स्वामिवात्सल्य की प्रथा ६२
* गंभीरता का फल ६२
* सम्पत्ति का प्रदर्शन ६२
* छोटी बहू का उत्तर ६४
* इच्छाएं आकाश के समान होती है ६५
* सूक्ष्म बुद्धि से धर्म ६६

धर्म-गुणात्मक है:- ६७-७०
* गगन मण्डप में गाय की प्रसूति ६७
* वर्ण-व्यवस्था ६७
* दुःखभीरु नहीं पापभीरु ६८
* अधिकार का उपयोग ६८
* अनीति को धन्यवाद नहीं ६८
* धर्म को समझो ६९

गुरु अपरिश्रावी:- ७१-७४
* जौहरी की परख ७१
* भूल स्वीकार = समाधि ७१
* चण्डकौशिक ७१
* आलोचना-सूक्ष्मबुद्धि से ७२
* ऐसी प्रामाणिकता व्यर्थ है ७३

मूल तत्त्व:- ७५-७९
* दया ७५
* अहिंसा ७५
* सत्य ७६
* नरो वा कुञ्जरो वा ७६
* व्रतों की शक्ति ७७
* वसु राजा ७७

सम्पूर्ण शरीर धर्म योग्य है:-८०-८५
* युवावस्था धर्म के लिए है ८०
* अनाथी मुनि ८१
* स्मरण में अंतिम, भूलने में पहला ८२
* अनाथी मुनि का संकल्प ८३
* श्रावक की व्याख्या ८४
* नोरवेल-जिनवाणी ८४
* श्रावक की दूसरी व्याख्या ८५

रसे जीते जीतं सर्वम्:- ८६-८८
* पाँच पर संयम ८६

* एक पर चार का आधार ८६
* आर्य मंगु ८६
* जिह्वा के दो काम ८८

परिशीलन से प्राप्तिः- ८९-९२
* घास ही दूध बन जाता है ८९
* गौतमस्वामी अष्टापद पर्वत पर ८९
* कंडरीक-पुंडरीक ९०

प्रकृति से सौम्यः- ९३-९५
* नहीं देखने पर कल्याणकारी ९३
* नौ प्रकार के कायोत्सर्ग ९३
* सरलता ९४
* प्रतिछाया को नहीं, वस्तु को पकड़ो ९४

समता की साधनाः- ९६-९९
* स्वभाव परिवर्तन आवश्यक है ९६
* तू जला तो नहीं न? ९६
* महात्मा अंगर्षि ९७
* समदृष्टि से सच्ची शांति ९८
* भामण्डल-आभामण्डल ९८
* ईर्ष्यालु सदा दुःखी ९८
* G.O.K ९९

सर्वत्र सत्य हीः- १००-१०२
* प्रिय वाणी १००
* सत्य भी असत्य १००
* नीति का धन १०१

अन्तर्दर्शनः- १०३-१०५
* अक्षय अन्तर्वैभव १०३
* अनुकम्पा १०३
* देह की नहीं, देव की पूजा १०४
* दो रोग १०५

लोकप्रियताः- १०६-१०८
* इहलोक विरुद्ध निंदा १०६
* निन्दा करना महापाप है १०६
* सरल हृदय की प्रार्थना १०७

परम की यात्राः- १०९-११३
* बहिरात्मा १०९
* अन्तरात्मा ११०
* मेरा कहाँ देता हूँ? ११०
* बस, प्रभु ही है ११०
* विपत्तिः न सन्तु शश्वत् १११
* पवित्र छाया १११
* परमात्मा १११
* वो ही आस करे ११२
* निन्दनीय प्रवृत्ति का त्याग ११२

लोकप्रियः- ११४-११६
* चार प्रकार के घड़े ११४
* विनय ११५

श्री सिद्धगिरिमंडन श्री ऋषभदेव भगवान

श्री शत्रुंजयतीर्थाधिपति श्री आदीश्वरपरमात्मने नमः

श्री शंखेश्वरजी तीर्थमां बिराजमान देवाधिदेव

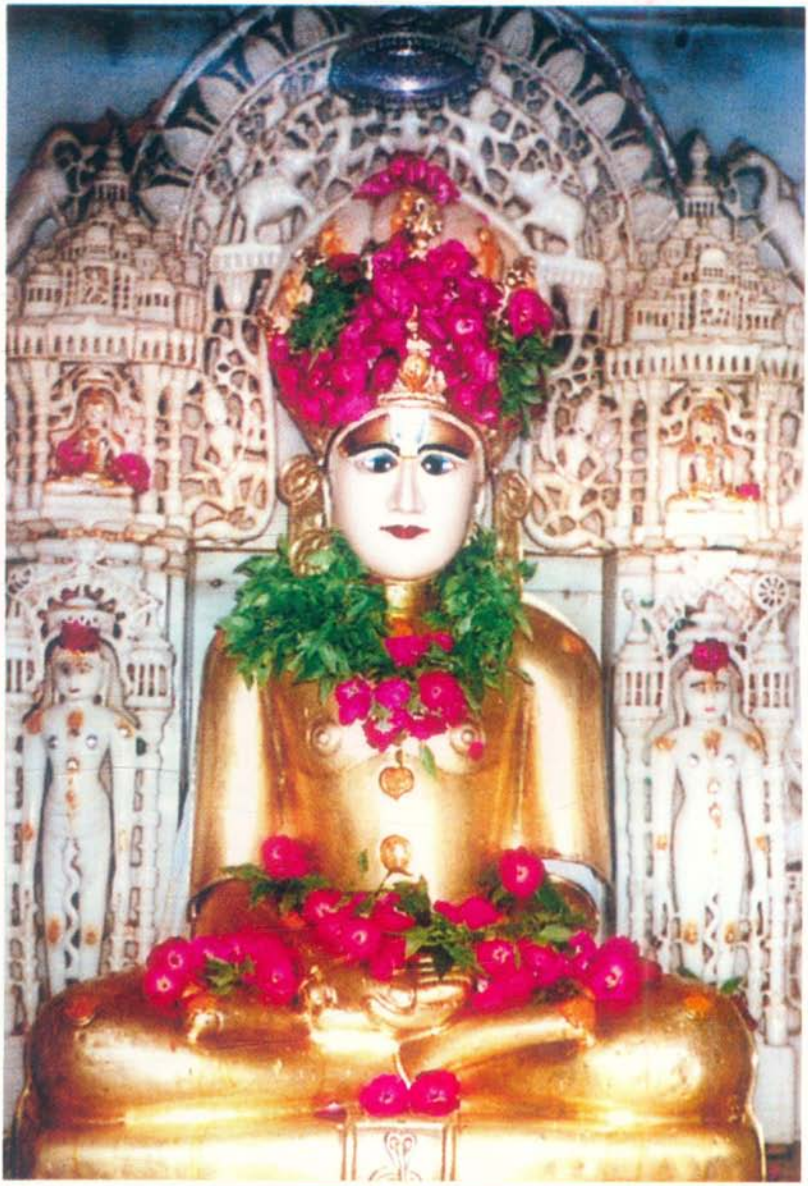

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान

पूज्यपाद महातपस्वी गणिवर्य पं. श्री मणिविजयजी महाराज (दादा)ना शिष्यरत्न
पूज्यपाद संघस्थविर आचार्यदेव श्री १००८

विजय सिद्धिसूरीश्वरजी (बापजी) महाराज

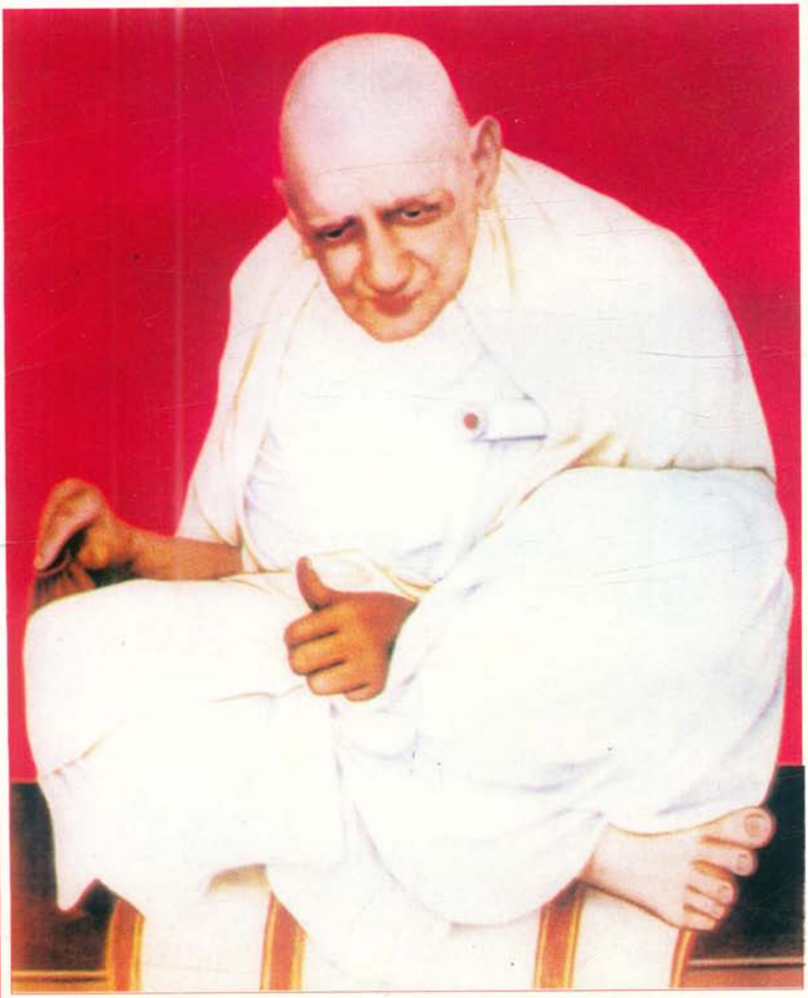

जन्म : वि. सं. १९११ श्रावण सुदि १५, वळाद (अमदावाद पासे)
दीक्षा : वि. सं. १९३४ जेठ वदि २, अमदावाद
पंन्यासपद : वि. सं. १९५७, सुरत
आचार्यपद : वि. सं. १९७५ महा सुदि ५, महेसाणा
स्वर्गवास : वि. सं. २०१५ भाद्रपद वदि १४, अमदावाद

पूज्यपाद संघस्थविर आचार्यदेव श्री १००८ विजयसिद्धिसूरीश्वरजी (बापजी)
महाराजना पट्टालंकार

पूज्यपाद आचार्यदेवश्री विजयमेघसूरीश्वरजी महाराज

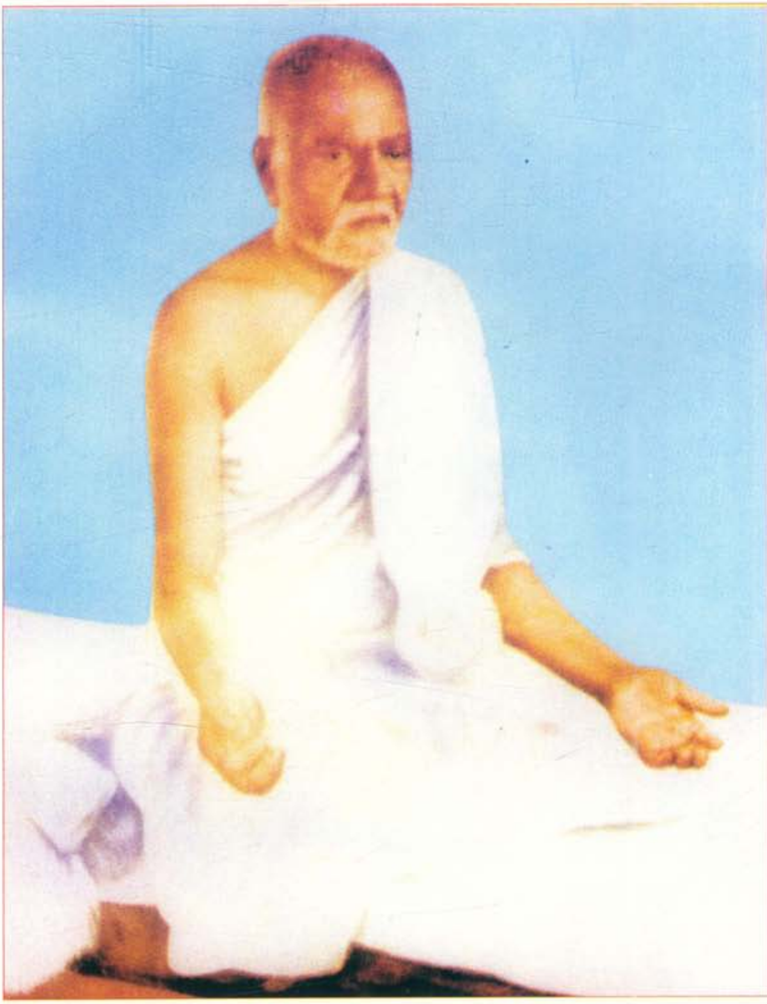

जन्म : वि. सं. १९३२ मागशर सुदि ८, रांदेर
दीक्षा : वि. सं. १९५८ कारतिक वदि ९, मींयागाम–करजण
पंन्यासपद : वि. सं. १९६९ कारतिक वदि ४, छाणी
आचार्यपद : वि. सं. १९८१ मागशर सुदि ५, अमदावाद
स्वर्गवास : वि. सं. १९९९ आसो सुदि १, अमदावाद

पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय संघस्थविर श्री १००८ आचार्यदेवश्री
विजयसिद्धिसूरीश्वरजी (बापजी) महाराजना पट्टालंकार
पूज्यपाद आचार्यदेवश्री विजयमेघसूरीश्वरजी महाराजना शिष्यरत्न

पूज्यपाद गुरुदेव मुनिराजश्री भुवनविजयजी महाराज

(मुनि जंबूविजय म.ना पिताश्री तथा गुरुदेव)

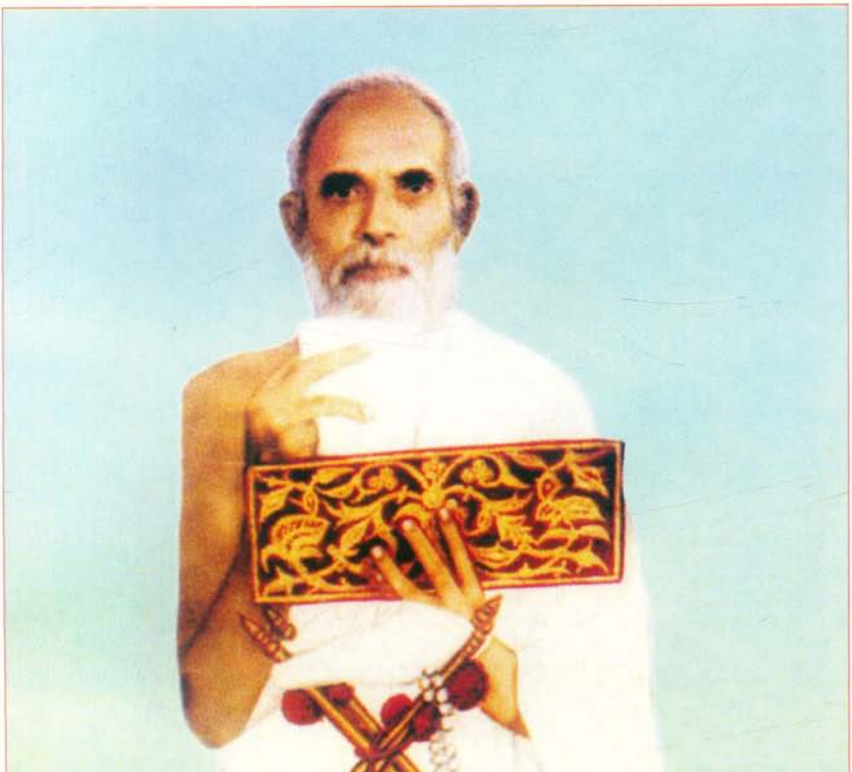

जन्म : वि. सं. १९५१ श्रावण वदि ५, शनिवार, ता.१०–८–१८९५, मांडल
दीक्षा : वि. सं. १९८८ जेठ वदि ६, शुक्रवार, ता.२४–६–१९३२, अमदावाद
स्वर्गवास : वि. सं. २०१५ महा सुदि ८, ता.१६–२–१९५९, शंखेश्वरजी तीर्थ

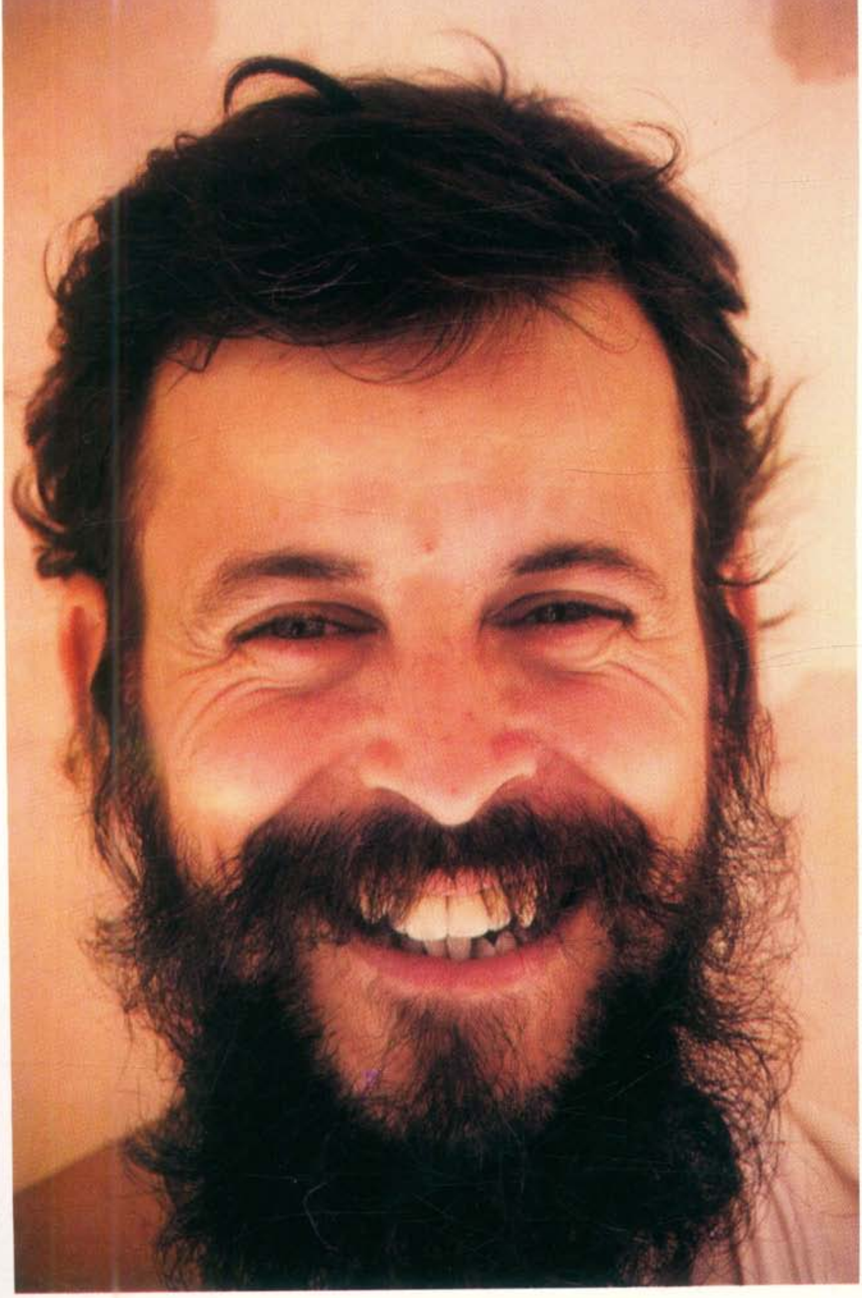

प्रातः वंदनीय

पू. साध्वीजी मनोहरश्रीजी म.सा. (बा महाराज)

विक्रम संवत १९५१ मागशर वद२, ता. १४-१२-१८९४, शुक्रवारे झंझुवाडामां पिता पोपटभाई तथा माता बेनीबेननी कुक्षिए जन्मेलुं तेजस्वीरत्न मणिबहेन, के जे छबील एवा हुलामणा नामथी मोटा थया अने बाळपणथी ज धर्मपरायण एवी आ तेजस्वी दिकरीने पिता मोहनलालभाई अने माता डाहीबहेनना पनोता पुत्र भोगीभाईनी साथे परणाव्या। वर्ष पर वर्ष वीतता चाल्या। जलकमलवत् संसारसुख भोगवतां एमनी दाम्पत्य-वेल पर पुत्रनुं पुष्प प्रगट्युं। नानी उंमरमां पडेलु धर्ममुबीज मणिबेनना जीवनमां हवे वृक्षरुपे फुल्युं-फाल्युं अने तेना फळ स्वरूपे पति अने पुत्रने वीरनी वाटे वळाव्या। जेओ प.मु.श्रीभुवनविजयजी म.सा. तथा पू.मु.श्रीजंबुविजयजी म.सा.ना नामे प्रसिध्धबन्या। पतिना पगले-पगले चालनारी महासतीनुं बिरूद सार्थक करता मणिबेने पण तेमना ज संसारी मोटा बहेन पू.सा. श्री लाभश्रीजी म.सा.ना चरणमां जीवन समर्पण कर्युं। तप, त्याग, समता, सहनशीलता जेवा गुणोने आत्मसात कर्या. ५७ वर्ष सुधी निरतिचारपणे संयम जीवननी आराधना करतां तथा वात्सल्यना धोधमां बधाने नवडावता ए गुरूमाता १०१ वर्षनी जैफ उंमरे संवत २०५१ पोषसुदि १० तां. ११-१-१९९५, बुधवारे पालिताणामां सिध्धाचलनी गोदमां समाई गया।

पूज्यपाद साध्वीजी श्री लाभश्रीजी महाराज (सरकारी उपाश्रयवाला)ना शिष्या

पूज्यपाद साध्वीजी श्री मनोहरश्रीजी महाराज

(मु. जंबूविजय म.ना संसारी मातुश्री)

जन्म : वि. सं. १९५१ मागशर वदि २, शुक्रवार, ता.१४–१२–१८९४ झींझुवाडा

दीक्षा : वि. सं. १९९५ महा सुदि १२, बुधवार, ता.१–२–१९३९ अमदावाद

स्वर्गवास : वि. सं. २०५१ पोष सुदि १०, बुधवार, ता.११–१–१९९५ रात्रे ८.५४ वीशानीमाभवन जैन उपाश्रय, सिद्धक्षेत्र पालिताणा.

संघमाता शतवर्षाधिकायु पूज्यपाद साध्वीजी
श्री मनोहरश्रीजी म. सा. ना शिष्या

साध्वीजी श्री सूर्यप्रभाश्रीजी महाराज

जन्म : वि.सं. १९७७, फागण वदि ६, सोमवार, आदरियाणा
दीक्षा : वि. सं. महासुदि १, रविवार, ता.३०–१–१९४९, दसाडा
स्वर्गवास : वि. सं. २०५१, आसोवदि १२, शनिवार, ता.२१–१०–१९९५, मांडल

सम्पादकीय दो शब्द

प्राकृतिक वातावरण के अत्यन्त प्रेमी, प्रसिद्धि से दूर भागने वाले, छोटे-छोटे गांवों में विचरने वाले पूज्य गुरुदेव का चातुर्मास संवत् २०४१ में समीग्राम में हुआ। चातुर्मास अर्थात् धर्मऋतु। चातुर्मास में वर्षा की झड़ी के समान गुरुवाणी की भी झड़ी बरसती है। चातुर्मास दरम्यान पूज्य गुरुदेव ने धर्मरत्न प्रकरण पर व्याख्यान दिया था। इस ग्रन्थ में श्रावक के २१ गुणों का वर्णन है। अलंकार और अतिशयोक्ति रहित होने पर भी तात्त्विक और मार्मिक, सीधी और सरल भाषा में वर्षा करती हुई गुरुजी की वाणी-धारा श्रोताओं के हृदय को तरबतर कर देती थी।

मुझे व्याख्यान के नोट लिखने की अत्यन्त तीव्र अभिलाषा थी। इसीलिए मैंने व्याख्यान के सारांश नोट कर लिए, क्योंकि सुना हुआ सम्पूर्ण याद नहीं रहता, किन्तु लिखा हुआ सालों तक स्थायी रहता है। एक समय जब मैं व्याख्यान के नोट्स पढ़ रही थी उसी समय एक भाई वंदन के लिए आए। उन्होने नोट बुक पढ़ने के लिए माँगी। लेखन में सादगी होते हुए भी वर्तमान में धर्मीजनों का मुखौटा पहनकर फिरने वाले लोगों के लिए ये सचोट बातें उनके दिल को स्पर्श कर गई। उन्होंने मुझे कहा - यह समस्त लेखन नोट बुक में ही रहे इसकी अपेक्षा इसको जनता के हृदय तक पहुँचाइये। गुरुदेव ग्रामों मे ही विचरण कर रहे हैं अत: उनके मुक्त विचारों से जनता वंचित रह जाती है। इसमें संचित गुरुवाणी के द्वारा अनेक धर्मीजनों को सत्य धर्म जानने को मिलेगा तथा श्रावक का मुखोटा धारण करने वाले आज के श्रावक भी सच्चे श्रावक बनेंगे। उन्होंने इन लेखों को व्यवस्थित करने के लिए मुझे कहा। मैं उनको 'हाँ' या 'ना' कहूँ उससे पूर्व तो वे भाई कुछ ही दिनों में प्रूफ लेकर मेरे सामने

प्रस्तुत हुए। मैंने पूज्य गुरुदेव को प्रूफ बतलाए। तत्काल ही उन्होंने नहीं कह दिया। हैं तो ये महापुरुष ही, उनके हृदय में करुणा का स्रोत बहता ही रहता है। अन्त में उन्होंने मेरी विनंती को स्वीकार कर 'हाँ' कहा। इस प्रकार पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद से यह काम प्रारम्भ किया।

इस छोटी सी पुस्तिका में विराट सागर छुपा हुआ है। इसमें धर्म करने वाला व्यक्ति कैसा होना चाहिए? उसके गुणों का वर्णन मार्मिक शैली में किया गया है। जैसे अगाध और अक्षय समुद्र में गिरा हुआ बिन्दु अक्षय बन जाता है तथा अमृत के एक बिन्दु से मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ व्यक्ति भी बैठ जाता है उसी प्रकार धर्म का एक बिन्दु भी जीवन में ओतप्रोत हो जाए तो वह जीवनरूपी नौका को पार कर देता है।

इस पुस्तक के प्रारम्भ में धर्म की व्याख्या करते हुए श्रावक के गुण वर्णित किए गये हैं। वैसे तो श्रावक के **२१ गुण** होते हैं किन्तु प्रारम्भ के **४ गुण - अक्षुद्र, रूपवान, प्रकृतिसौम्य और लोकप्रिय** का वर्णन इसमें किया गया है, अन्य गुणों का विवेचन आगे किया जाएगा।

मेरे लिए सम्पादन का यह प्रथम ही अवसर है। सम्पादन का काम कठिन होने पर भी मुझे मेरी स्वर्गीया तारक-गुरुवर्या, पूजनीया, शतवर्षाधिकायु, संघमाता, बा महाराज के प्रिय नाम से जगत्प्रसिद्ध, वात्सल्यमयी गुरुमाता पूज्या साध्वीश्री **मनोहरश्रीजी** महाराज साहब (पूज्य जम्बूविजयजी महाराज साहब की सांसारिक मातुश्री) तथा पूजनीया सेवाभावी गुरुवर्या **श्री सूर्यप्रभाश्रीजी** महाराज साहब के आशीर्वाद का साथ मिला है।

संयम जीवन की आराधना करते हुए मेरे सांसारिक पूज्य पिताश्री **धर्मघोष-विजयजी** महाराज साहब तथा मातुश्री **आत्मदर्शनाश्री** जी महाराज साहब का स्नेहाशीष ही मेरा बल बना।

पूज्य गुरुदेव ने अन्तिम प्रूफ में रही हुई क्षतियों को दूर किया है अत: मैं उनकी ऋणी हूँ। पूज्यश्री के शिष्य परिवार ने प्रूफ पढ़ने में जो सहायता की है उसके लिए मैं उनका आभार स्वीकार करती हूँ।

स्वयं के अमूल्य समय का भोग देने वाले श्रीअजयभाई का भी बहुत-बहुत आभार मानती हूँ।

अन्त में यह पुस्तक अनेक धर्मिष्ठों के लिए सत्य मार्ग प्रेरक बने यही मेरी मनोकामना है। वीतराग की आज्ञा के विरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो या प्रूफ वांचन/सुधार में किसी भी प्रकार की त्रुटी रह गयी हो तो कृपया वाचकगण उसे सुधारकर पढ़ें, साथ ही हमें भी सूचित करें ताकि अगले संस्करण में सुधार हो सके। भूलचूक के लिए कृपया वाचकगण क्षमा करें।

यह पुस्तक पूजनीया वात्सल्यमयी गुरुमाता के चरणों में समर्पित कर मैं यत्किंचित् ऋण से मुक्त होने की कामना करती हूँ।

आषाढ़ वदि ६, संवत् २०५२ मनोहर-सूर्य-शिशु

गांधीनगर

धर्म-जीवनशुद्धि

आषाढ़ सुदि १४

रे ! इस संसार में सुख प्राप्त करना !

समग्र जगत के प्राणी निरन्तर सुख की अभिलाषा को हृदय में रखते आए हैं। सभी की सर्वदा एक ही अभिलाषा रहती है कि हम कैसे सुखी हों, हमारा जीवन किस प्रकार से आनन्दमय बने? इस इच्छा की पूर्ति के लिए मानव को पुरुषार्थ तो करना ही पड़ता है। मानव को सुख पूर्वक चलना हो तो अनभिलषित दुःखदायी मार्ग छोड़ ही देना चाहिए। भगवान का सर्वदा एक ही ध्येय रहता है कि समस्त जगत को कैसे सुखी करूँ? नन्दीसूत्र में कहा गया है - **जयइ जगजीवजोणि** अर्थात् भगवान् समस्त जीवों की योनियों के जानकार हैं। इस जगत में प्राणी भिन्न-भिन्न योनियों में क्यो भटकता है और क्यों दुखी होता है? इसका मुख्य कारण यही है कि मनुष्य सुख के लिए आँखे बंद करके चाहे जैसे पापों को करने के लिए तैयार रहता है। इसी के फलस्वरूप उसको जहाँ-तहाँ भटकना पड़ता है। कोई व्यक्ति जब गाँव में से शहर में जाता है उस समय नगर निवासी उस ग्रामवासी को कहते हैं- भाई! आगे-पीछे देखकर चलना। भगवान् भी हमको इसी प्रकार कहते हैं- आगे-पीछे देखकर चलना। आगे अर्थात् भविष्य में तुझे किस गति में जाना है, पीछे अर्थात् जगत में व्याप्त विषमता का कारण क्या है? इन सभी सुख-दुःख का मूल कारण जानने को मिलता है तभी हमारे हाथ में सच्चा धर्म आता है। धर्म अर्थात् जीवन की शुद्धि, जीवन का निर्माण।

वर्ष नाम क्यों पड़ा?

इस लोक के निर्माण के लिए भी धर्म बहुत ही आवश्यक है। जीवन में शान्ति और शक्ति के लिए धर्म कितना उपयोगी है इस पर

विचार करें तो समझ में आता है कि बारह महीनों के नाम के लिए वर्ष शब्द का प्रयोग क्यों किया गया? ऋतुओं के नाम पर वर्ष का नाम क्यों नहीं रखा? इन छ: ऋतुओं में से वर्षा ऋतु के आधार पर ही बारह महीनों का नाम वर्ष शब्द से रखा इसका क्या कारण है? समझ में आता है की वर्षा अच्छी होती है तो बारह महीने भी अच्छे गुजरते हैं यदि वर्षा कम होती है या अधिक होती है तो सारा वर्ष ही बिगड़ जाता है, उसी प्रकार चौमासा शब्द का महत्व भी इसीलिए है कि चार महीनों के भीतर वीतराग प्रभु की वाणी का निरन्तर श्रवण होता रहता है और उस प्रभु की वाणी के श्रवण से जीवन में कुछ न कुछ परिवर्तन होता है। चौमासे में वाणिज्य-व्यापार कम होता है इसी कारण चौमासे में मनुष्य धर्मध्यान कर सकता है जिस प्रकार वर्षा की झड़ी लगती है। उसी प्रकार चौमासे में धर्म की भी झड़ी लगती है चौमासा आता है तो डॉक्टर का मौसम भी आ जाता है क्योंकि चौमासे में जब तप-जप आदि धर्मध्यान नहीं करते हैं तो स्वाभाविक रूप से रोग उत्पन्न होते ही हैं। यदि एक चौमासा भी सुख/आरोग्य पूर्वक सम्पन्न होता है तो सारी जिन्दगी ही सुधर जाती है। अरे! जीवन ही नहीं किन्तु धार्मिक संस्कारों का सिंचन हो जाए तो कई जन्म सुधर जाते हैं। यह तभी सम्भव है जब वीतराग की वाणी को हम अच्छी तरह से धारण कर सकें। इसीलिए चातुर्मास हेतु साधु-साध्वियों को आग्रह पूर्वक विनंती करके अपने यहाँ लाते हैं।

मृत्यु एक मेहमान है . . . .

शास्त्रकार कहते हैं कि मनुष्य जन्म महान् दुर्लभ है विश्व की सभी योनियों के प्राणी यही इच्छा रखते हैं कि मुझे मनुष्य बनना है। क्या वह वास्तव में मनुष्य बन सकते हैं? जो जीव भयंकर यातनाओं के साथ दु:ख/पीड़ा को भोग रहे हैं, वे जीव मनुष्य होते तो क्या वे उन पीड़ाओं को भोगते? आज मावन जीवन के रक्षण के लिए नियम

बनते हैं किन्तु प्राणियों के रक्षण के लिए किसी भी प्रकार के नियम हैं? इन जीवों की कत्ल/हत्या होती है तो क्या वे जीव बोल सकते हैं? इन मूक प्राणियों के स्थान पर यदि हम होते तो कभी के त्राहिमाम्-त्राहिमाम् पुकार उठते। यह मनुष्य जन्म दुर्लभ हैं, इन शब्दो कों सुनते सुनते हम अत्यधिक ढीठ हो गये हैं, कान भी घिस गये हैं, हमें किसी भी दिन यह विचार नहीं आता है कि हम किस दुर्लभ योनि में रह रहे हैं। हमें तो इस दुर्लभता का ध्यान ही नहीं आता है। हम तो यह समझते हैं कि अनन्त काल तक हमें यहीं रहना है। मृत्यु ने हमारे बाल पकड़ रखे हैं और घसीट कर हमें ले जा रहा है ऐसा दृश्य यदि हमारी आँखों के सामने खड़ा हो जाए तो हमारा मन धर्म करने की ओर अवश्य ही प्रेरित हो जाता।

श्री वस्तुपाल की जागृति . . . .

गुजरात के महामन्त्री वस्तुपाल-तेजपाल कैसे समृद्धि और शौर्य सम्पन्न थे! एक समय महाराष्ट्र के राजा के साथ युद्ध हुआ। राजा ने कहलवाया- 'वस्तुपाल! तू वणिक् पुत्र है, हम तुझे समाप्त कर देंगे।' वस्तुपाल ने उत्तर में कहलवाया- 'हाँ, मैं वणिक् हूँ किन्तु सुनो- मैं जब दुकान पर बैठता हूँ उस समय तराजू में सामग्री को तोलता हूँ किन्तु जब मैं युद्ध के मैदान में होता हूँ उस समय शत्रुओं के सिरों को तोलता हूँ।' जैसे वे पराक्रमी थे वैसे ही वे दानप्रेमी भी थे। दान देते समय वे किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखते थे, करोड़ों रुपयों का दान देते थे। ऐसे समर्थ व्यक्ति न केवल दानवीर एवं पराक्रमी ही थे अपितु विद्वान् भी थे। संस्कृत में सुन्दर सुभाषितों की रचना करते थे। प्रत्येक दृष्टि से समर्थ थे। "धर्माभ्युदय" काव्य की प्रतिलिपि वस्तुपाल ने स्वयं अपने हाथों से की थी। कार्यों में अत्यधिक व्यस्त होने पर भी वे साहित्य-लेखन करते

थे। ऐसे महान् सामर्थ्य वाले व्यक्ति जब घर से बाहर निकलते उस समय कितने ही लोग उनकी कुशल-क्षेम पूछते थे। उस समय वस्तुपाल दर्पण में अपने प्रतिबिंब को देखकर उससे पूछते थे- 'वस्तुपाल! तुम्हारी कुशलक्षेम सब लोग पूछते है पर कुशलक्षेम है कहाँ? मृत्यु का कोई भरोसा ही नहीं है। तेरी कुशलता कहाँ है? तु तो मृत्यु से जकड़ा हुआ है।' उनके जीवन में ऐसी जागृति थी। उनके जैसी जागृति हमारे जीवन में भी आ जाए तो हमारा जन्म भी सफल हो जाए। हमारे पास किसी प्रकार की गारन्टी नहीं है कि हम मृत्यु के बाद सुखी होंगे ही। हमारी चौबीस घण्टों की प्रवृति क्या है? खाना-पीना, पहनना, घूमना-फिरना, बस यही विचार दिमाग में घूमते रहते हैं, क्या अन्य विचार भी करते हैं? यहाँ मस्ती से खाते हैं किन्तु कुत्ते की योनि में जाने पर एक रोटी के टुकड़े के लिए भी पत्थर खाने पड़ेंगे। **कवि कालिदास कहते हैं- तुम थोड़े से टुकड़ों के लिए अपना बहुत कुछ खो रहे हो।**

मातृभक्त कपिल. . . .

कपिल नाम का एक ब्राह्मण था। कपिल के पिता राज्य के मंत्री थे। अकस्मात् ही उनकी मृत्यु हो गई। कपिल छोटा था इसलिए राजा ने मन्त्री पद दूसरे को दे दिया और राज्य की ओर से जो वैभव एवं साधन सामग्री मिलती थी वह भी कपिल से छीनकर नये मन्त्री को दे दी।

एक दिन वह नया मन्त्री बड़े ठाठ-बाठ के साथ कपिल के घर के पास से निकला। उसको देखकर कपिल की माता को पुराना समय और समृद्धि याद आने से वह जोर-जोर से बुक्का फाड़ कर रोने लगी। कपिल ने पूछा- 'माँ, तुम क्यों रोती हो? उत्तर में उसकी माता कहती है- 'पुत्र! यह सारा वैभव एक दिन अपने घर पर था। जब तू

बालक था यह वैभव दूसरों को सौंप दिया गया। तुझे अब मन्त्री पद नहीं मिलेगा, क्योंकि तू पढ़ा-लिखा नहीं है, इसलिए मन्त्री पद मिलने का प्रश्न ही नहीं है।' कपिल कहता है-'मैं पढूँगा।'- माता कहती है- 'तुझे यहाँ कोई पढ़ायेगा नहीं और भावी भय से नया मन्त्री तुझे पढ़ने भी नहीं देगा।' कपिल कहता है- तो क्या किया जाए? माता कहती है-'यहाँ से थोड़ी दूर पर एक नगर में तेरे पिता के मित्र रहते हैं, उनके पास जाकर पढ़े तो काम बन सकता है।' कपिल को एक ही लगन लगी थी कि माता को कैसे सुखी किया जाए? यदि इसका मन प्रसन्न होता है तो मैं जहाँ कहीं भी पढ़ने के लिए जाने को तैयार हूँ। सभी प्रकार की सूचना प्राप्त कर वह कपिल घर से निकल पड़ता है। उसके हृदय में केवल मातृभक्ति ही भरी हुई है। **हम तो अकेली क्रिया को ही धर्म समझ** कर करते हैं। **धर्म में सब सद्गुणों का समावेश हो जाता है मातृभक्ति और पितृभक्ति भी उसमें आ जाती है।** श्री हरिभद्रसूरि जी कहते हैं- **त्रिकालं चास्य पूजनम्** अर्थात् माता-पिता की त्रिकाल पूजा करनी चाहिए। केसर की कटोरी लेकर पूजा करने की नहीं है परन्तु त्रिकाल माता-पिता का चरणस्पर्श करना, उनको प्रेम से भोजन करवाना, उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखना आदि। हमने तो धर्म को मंदिर और उपाश्रय तक ही सीमित कर दिया है। घर में आकर चाहे हम माता-पिता का तिरस्कार करें, दुकान पर बैठकर अनेक लोगों को ठगें, क्या इसको धर्म मान सकते हैं? कपिल के पास में मातृभक्ति के अतिरिक्त कोई अन्य धर्म नहीं था, अत: माँ का आर्शीवाद लेकर वह निकलता है और पिता के मित्र के ग्राम में पहुँच जाता है। उनके समक्ष अपनी सारी स्थिति का वर्णन करता है। पंडित कहता है- 'भाई! मैं निर्धन हूँ, तेरे भोजन की व्यवस्था हो जाए तो मैं तुझे पढ़ा सकता हूँ। तेरे भोजन की व्यवस्था तो अन्य स्थान पर करनी ही होगी।' यह सोचकर पंडितजी किसी सेठ

के घर पहुँचते है और सेठ को कहते हैं- 'सेठ! मेरे पास एक बालक पढ़ने के लिए आया है, उसको तुम प्रतिदिन भोजन करवा दो तो मैं उसे पढ़ा सकता हूँ।' सेठ ने हाँ कही। कपिल वहाँ नियमित रूप से भोजन करने जाता है और प्रसन्नता पूर्वक रहता है। कपिल जब सेठ के यहाँ भोजन करने जाता है उस समय प्रतिदिन एक लड़की उसको भोजन करवाती है। निरन्तर परिचय बढ़ने से उन दोनो में काम-वासना भी जाग्रत हो जाती है और वह प्रतिदिन बढ़ती हुई पति-पत्नी के सम्बन्धों तक पहुँच जाती है। एक दिन कपिल जब भोजन करने के लिए पहुँचता है उस समय वह लड़की उदास नजर आती हैं। कपिल हठ पूर्वक उससे पूछता है कि तुम उदास क्यों हो? लड़की कहती है- हम दासियों के लिए केवल एक ही त्यौहार आता है उस समय हम सब लोग अच्छे कपड़े पहनते हैं, अच्छा खाते-पीते हैं और मौज मजा करते हैं। मेरे पास तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं हैं, अब बताइए मै क्या करूँ? तब कपिल कहता है- 'मेरे पास भी एक फूटी कौड़ी नहीं है यदि तू कोई रास्ता बताए तो मै मदद कर सकता हूँ।' लड़की कहती है- 'यहाँ एक समृद्धिशाली राजा रहता है उस राजा के पास प्रातः काल में सबसे पहले पहुँचकर जो आशीर्वाद देता है उसको वह दो मासा सोना देता है।' कपिल घर जाकर सो जाता है किन्तु उसे चिंता के कारण नींद नहीं आती। मध्य रात्रि के समय वह उठता है और दौड़ने लगता है। कपिल के दिमाग में यही था कि मेरे पहले कोई आदमी राजा के पास नहीं पहुँच जाए, इसी भय से वह भाग रहा है। मध्य रात्रि के समय उसको भागते हुए देखकर चौकीदार आवाज देता हैं- कौन भाग रहा है? किन्तु कपिल रुकता नहीं है। अन्त में वह पहरेदार दौड़कर उसे पकड़ लेता है और कैदखाने में डाल देता है। दूसरे दिन प्रातःकाल कैदी के रूप में उसे राज्य सभा में खड़ा किया जाता है,

राजा स्वयं ही राज्य सभा में बैठकर न्याय किया करता है। राजा उस कपिल से भागने का कारण पूछता है? कपिल पूर्ण रूप से सारी हकीकत बता देता है। सत्य की सर्वदा जय होती है। कपिल के मुख से सत्य घटना सुनकर राजा प्रसन्न होकर कहता है- 'तुम्हें जो माँगना हो माँग लो।' कपिल सोचता है-'राजा से मैं क्या माँगू'? सोच विचार के बाद राजा से वह विचार के लिए समय माँगता है। राजा उसे समय देता है। कपिल विचार करने के लिए बगीचे में जाता है। कपिल क्या विचार करता है? क्या माँगता है और उसके बाद क्या घटना होती है? इसका आगे देखा जाएगा।

धर्मरहित चक्रवर्ती पद मुझे नहीं चाहिए

आषाढ़ सुदि पूर्णिमा

कल्याणकारी धर्म . . . .

धर्म क्या है? इसको जीवन में समझने की आवश्यकता है। जीवों की तीन भूमिकाएं होती हैं- बाल्यावस्था, मध्यमावस्था, और प्राज्ञावस्था। बाल्यावस्था में बालकों को खिलौने आदि प्रिय होते हैं। मध्यमावस्था में उसको खिलौनो में कोई रुचि नहीं होती, वह क्रियाकाण्ड आदि जो धर्म स्वरूप माने जाते हैं उसमें रुचि लेता है। मनुष्य की जिस प्रकार की योग्यता होती है उसके साथ वैसी ही वार्ता करनी चाहिए। धर्म एक विशाल वस्तु है जिसमें सब वस्तुओं का समावेश हो जाता है। धर्म की प्राप्ति अर्थात् सद्गुणों की प्राप्ति है। धर्म का स्वरूप दिव्य स्वरूपमय होता है। धर्म का दिव्य स्वरूप जब जीवन में आता है तब जीवन मंगलमय बन जाता है। जब धर्म की विलक्षणता का ध्यान आता है तब मनुष्य को जानकारी होती है। इस धर्म के बिना एक क्षण भी जीवन नहीं जी सकते। जीवन में मान-सम्मान, प्रतिष्ठा सब प्राप्त हो जाने पर वह समझता है कि मुझे सर्वस्व मिल गया है। किन्तु यह सब कृत्रिम/बनावटी होता है इन वस्तुओं के चले जाने पर आदमी दिङ्मूढ सा खड़ा का खड़ा रह जाता है, उसको खबर भी नहीं होती। इन नश्वर/कृत्रिम वस्तुओं के समक्ष धर्म सुदृढ़ होता है, उसमें बनावटीपन नहीं होता है। वैशाख के महीने में मध्याह्न की गर्मी में जंगल में कहीं पर भी छायादार वृक्ष मिल जाता है तो मन को कितनी शान्ति मिलती है, उसी प्रकार धर्म मिलने से उसको सर्वत्र शान्ति मिलती है।

आचरण का ज्ञान आवश्यक है . . . .

इस जन्म में ही धर्म के आचरण की सुविधा प्राप्त है। अन्य किसी योनि में क्या धर्माचरण का अवसर मिल सकता है? **महाराजा**

कुमारपाल प्रतिदिन उठने के साथ ही भगवान से प्रार्थना करते थे- हे प्रभु! आपके धर्म के बिना मुझे चक्रवर्ती का पद और समृद्धि मिल जाए तब भी उसकी मुझे आवश्यकता नहीं है। चक्रवर्ती की समृद्धि किस प्रकार की है, जानते हो? ८४ लाख घोड़े, ८४ लाख हाथी, ९६ करोड सैनिक दल और १६ हजार देवता जिसकी सेवा में हाजिर रहते हैं। वह असीम बल का धारक होता है। एक अवसर्पिणी से उत्सर्पिणी के मध्य में बारह चक्रवर्ती होते हैं। चक्रवर्ती की कितनी अपार शक्ति होती है? देखिए- चक्रवर्ती के एक ओर १६ हजार राजागण हों और दूसरी तरफ १६ हजार राजागण हो, बीच में चक्रवर्ती स्वयं खड़ा हो, उसके हाथ में शृङ्खला/जंजीर हो। उस अवस्था में चक्रवर्ती कहे - 'आप लोग मुझे खेंचिए।' दोनों ओर के ३२ हजार राजा अपनी सारी शक्ति लगाकर खेंचते हैं किन्तु चक्रवर्ती को एक मिलीमीटर भी हिला नहीं पाते। चक्रवर्ती की मुख्य रानी में भी इतना ही सामर्थ्य होता है। वह ललाट पर बिंदी लगाते समय अपने हाथ में रहे हुए हीरे को मसल करके उसके टुकड़ों को लगाती है। ऐसे अतुलबल धारक चक्रवर्ती पद को भी कुमारपाल महाराजा धर्म के लिए में त्याग देते हैं, इस त्याग के लिए वह तैयार है। बड़े-बड़े राजा और राजाधिराज हो गए किन्तु आज उनका कोई अस्तित्व नहीं है, तो क्या हमारी सम्पत्ति सदा के लिए स्थिर रहने वाली है? धर्म का उपदेश अवश्य ही सुनते हैं किन्तु जब तक उसका महत्व हमें समझ में नहीं आएगा तब तक वह उपदेश भी व्यर्थ है। जब भगवान् के उपदेश को हम ग्रहण कर सकेगें उस अवस्था में यह सम्पत्ति भी हमें नगण्य सी लगेगी। जब तक हमारे जीवन पर पुण्य रूपी बादलों की छाया है तब तक किसी प्रकार की बाधा/अड़चन नहीं है। किन्तु, जब यह पुण्य रूपी बादल हट जाएगें उस समय गर्मी की उष्मा को हम सहन नहीं कर पाएगें। अतः गर्मी

को सहन करना सीखना ही चाहिए। हमारा रुपिया क्या अमरिका में काम आ सकता है? नहीं, यह सम्पत्ति जो इसलोक में भी काम नहीं आती है तो फिर परलोक में वह कैसे काम में आ सकती है?

कपिल का चिन्तन ....

कपिल विचार करता है- राजा से दो मासा सोना ही क्यों माँगा जाए? अधिक माँग लूँ यही ठीक रहेगा, क्योंकि उस लड़की के साथ मुझे संसार रचाना है, अतः जब देने वाला दे रहा है तो फिर कम क्यों माँगूं? इस प्रकार के विचार ही विचार में दो मासा सोना से बढ़ता हुआ करोड़ तक पहुँच जाता है। पुनः विचार-शृङ्खला चलती है और वह सोचता है कि करोड़ की सम्पत्ति से भी मेरा काम नहीं चलेगा? क्यों न राजा से सारा राज्य ही माँग लूँ जिससे की मेरा भावी जीवन शान्ति से व्यतीत हो जाए। एकाएक उसकी विचारधारा पलटती है। कपिल के पास एक गुण मातृभक्ति था और दूसरा गुण उसमें चिन्तनशीलता का था। वह विचार करता है- जिस राजा ने मुझे कैदखाने में रखने के स्थान पर कुछ माँगने को कहा और मैं उसका सर्वस्व लूंटने का विचार करने लगा? अहो! माता ने मुझे यहाँ किसलिए भेजा था और मैंने यहाँ क्या नाटक प्रारम्भ कर दिया? उसके विचार एकदम बदल जाते हैं। संसार के स्वरूप को वह समझ लेता है और साधु बनने का विचार करता है। **मनुष्य सब का विचार करता है किन्तु किसी दिन अपना विचार भी करता है?** पूर्ण विचार करने के पश्चात् वह कपिल राजा के पास आता है और अपने समस्त विचार 'साधु बनना चाहता हूँ' उनके समक्ष रखता है। तत्काल ही साधुवेश धारण कर वह वहाँ से निकल पड़ता है। मार्ग में उसे लूटने वाले ५०० चोर मिलते हैं। चोर लोग उसको फक्कड़ समझ कर कोई भजन सुनाने का आग्रह करते हैं। कपिल मुनि गाते हैं और उस गीत की कड़ी को चोरों से भी बुलवाते हैं। उस गीत की

कड़ी का अर्थ यह है- यह संसार अस्थिर है। इस संसार मे कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। आँख बंद होने के पश्चात् कुत्ता, बिल्ली और चूहे इत्यादि की योनियां सामने नजर आती हैं। हमने ऐसा कौनसा सुकृत किया है जिसके कारण हम इन पशु योनियों में नही जाएगें? कपिल मुनि चोरों से गीत की कड़ी की पुनरावृत्ति करवा रहे है और ५०० चोर भी उस गीत को गाते-गाते तथा उस पर विचार करते हुए प्रतिबोध को प्राप्त हो जाते हैं। अन्त में वे दीक्षा ग्रहण करने को उत्सुक हो जाते हैं।

धर्म के मूल पाँच तत्त्व हैं - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, निष्परिग्रहता। यही तत्त्व साधु धर्म के पँच महाव्रत हैं। इन पाँच महाव्रतों में रही हुई शक्ति सामान्य नहीं होती है। उस शक्ति का सामर्थ्य ऐसा प्रबल होता है कि वह समस्त पृथ्वी को कंपित कर सकता है और उन व्रतों में तनिक सी भूल भी भवभ्रमण को बढ़ा देती है।

हम कहाँ?

श्रावण वदि १

बेर के झाड़ की छाया के समान ....

मौज-मस्ती में डूबे हुए युवकगण मदमस्त बन जाते है। बंगला, गाड़ी, मौज-सुख आदि सब सुविधाएं मिलने से वे धर्म को भूल जाते हैं। उनके दिमाग में भोगसुख की ही विचारधारा चलती रहती है। प्राणीगण सर्वदा इस लोक के स्वर्ग में ही डूबे रहते हैं। प्रचंड रूप से तपती हुई भूमि में बेर के एक वृक्ष की छाया हो और मनुष्य उसकी छाया में बैठा हुआ हो, परन्तु वह छाया कब तक और कैसी? उसी प्रकार इन भोगसुखों की छाया भी क्षणिक होती है। यह वैभव समृद्धि बेर के वृक्ष के नीचे फैले हुए कांटों के समान होती है। जब मनुष्य की दृष्टि परलोक तक पहुँचती है तब उसे खयाल आता है कि मुझे क्या प्राप्त करना है?

एक से डूबता है ....

राजा भोज के समय की बात है। उनके राज्य में पानी से लबालब भरा हुआ एक तालाब था। वहाँ किसी ने कहा- 'इस तालाब को जो तैरकर पार कर जाएगा उसे मैं एक लाख सोना मोहर दूँगा।' एक मनुष्य ने यह बीड़ा स्वीकार किया किन्तु वह तालाब को तैरकर पार न कर सका, बीच में ही डूब गया तथा वह मरकर व्यन्तर के रूप में उत्पन्न हुआ। उसने अपने ज्ञान से अपना पूर्वभव देखा। उस व्यन्तर ने तालाब में एक आश्चर्य उत्पन्न किया। तालाब के मध्य में स्वयं का एक हाथ ऊँचा करता है और आवाज देता है - एक से डूबता है... एक से डूबता है, इस आवाज से लोग डर जाते हैं और सोचते हैं कि यह कोई भूत-प्रेत की लीला है। भोज राजा तक यह बात पहुँचती है। भोज राजा अपने विद्वानों से कहता है- 'इस तालाब में से हाथ निकलता है और आवाज करता है,

इसके पीछे कारण क्या है?' किन्तु कोई भी उत्तर नहीं दे पाता। एक समय एक भरवाड़, गाय, भैंस, बकरी चराने वाले के कान में यह बात पहुँचती है। वह कहता है- मुझे वहाँ ले चलो, मै इसका कारण खोज लूँगा। वह भरवाड़ वहाँ जाकर लोगों से पूछता है- इसके पहले भी कोई घटना हुई थी? लोग पूर्व की सोना मोहरों के लोभ में तालाब के बीच डूबे मनुष्य की घटना बताते हैं। भरवाड़ कहता है- ओह! यह तो एक से डूबता है अर्थात् लोभ से मनुष्य डूबता है, क्योंकि व्यन्तर ही पूर्व में लोभ के वशीभूत होकर डूबा था। लोभ एक ऐसी अनर्थकारी वस्तु है कि वह सबका सत्यानाश कर देती है। हमें केवल परलोक के लिए ही नहीं, किन्तु अपनी आत्मा और देश को बचाने के लिए भी धर्म चाहिए। धर्म के सिद्धान्त सम्पूर्ण विश्व को समझने के लिए होते हैं, केवल चार दीवारों के बीच में बैठने वाले मनुष्यों के लिए नहीं। हमारा सम्पूर्ण व्यवहार केवल पैसे के पीछे ही घूमता रहता है।

छः प्रकार का मानव होता है . . . .

मानव छः प्रकार के होते हैं- १. अधमाधम, २. अधम, ३. विमध्यम, ४. मध्यम, ५. उत्तम, ६. उत्तमोत्तम। इसमें पहले नम्बर का अधमाधम मनुष्य इस लोक और परलोक दोनों को ही बिगाड़ देता है। भगवान् ने हमको समझाने के लिए नारकी और देवलोक के मध्य में हमको न रखकर पशुओं के बीच मे किसलिए रखा? हम समझ जाएँ की पाप और पुण्य भी कोई चीज है। अपनी आँख के समक्ष पशुओं की यातना/पीड़ा देखकर हमारा दिल कुछ पिघल जाए। धर्म कार्य की ओर प्रेरित होकर इस योनि में ही सुधरने का अवसर है। दृढ़प्रहारी जैसा पापी में पापी मनुष्य भी संसार सागर को तैर गया। वह यदि अन्य योनि में होता तो उसे तिरने का मौका कहाँ मिलता? इसीलिए भगवान् ने हमको सबके बीच मे रखा है, तथापि हम भोगसुखों के पीछे ऐसे अन्ध बन गये है कि किसी भी दिन हमें यह विचार नहीं आता है कि मृत्यु के पीछे हमारा क्या होगा?

दूसरा नम्बर अधम मनुष्य का आता है। ये अधम मनुष्य ऐसी प्रकृति के होते हैं कि वे अपने इस लोक को तो नहीं बिगाड़ते, क्योंकि उनका सारा व्यवहार इस लोक में सुख के लिए होता है, उनके समक्ष परलोक के सुख की कोई धारणा नहीं होती। ऐसे मनुष्य को यदि कहा जाता है- भाई! परमात्मा की कुछ उपासना करोगे तो परलोक में तुम सुखी हो जाओगे। अधम मनुष्य तत्काल ही उत्तर देंगें- इन बातों को छोड़ो, इस लोक की बात यहाँ करो, परलोक की बात परलोक में करेंगे।

तीसरे नम्बर के मनुष्य विमध्यम होते हैं। विमध्यम दोनो लोकों का विचार करते हैं। इस लोक मे भी कीर्त्ति प्राप्त करते हैं और परलोक के लिए भी धर्म की आराधना करते हैं।

चौथे नम्बर के मनुष्य मध्यम कोटि के होतें है। ये मध्यम परलोक के सुख की ही इच्छा रखते हैं।

पाँचवे नम्बर के प्राणी उत्तम कहलाते हैं। ये उत्तम कोटि के मनुष्य इस लोक और परलोक के सुख की चिन्ता नहीं करते हैं। वे तो सांसारिक जीवन को ही बंधन रूप मानते हैं। इनकी सर्वदा यह प्रवृत्ति रहती है कि भोगसुखों से जल्दी से जल्दी मुक्त हो जाएं। उत्तम प्रकृति के मनुष्य सर्वदा स्वयं मे रहे हुए दुर्गुणों का ही अवलोकन करते हैं। इनको स्वयं की प्रशंसा बिच्छु के डंक के समान लगती है। मोक्ष अर्थात् जीवन में रहे हुए समस्त दुर्गुणों का नाश करना और उनके नाश करने के लिए सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं।

छठे नम्बर के जीव उत्तमोत्तम कहलाते हैं। अरिहन्त परमात्मा इस कोटि में आते हैं। उनकी विचारधारा यही रहती है कि जगत् के समस्त जीव कल्याण को प्राप्त हों। ये अरिहन्त निर्वाण के पूर्व अन्तिम समय तक विश्व के समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए उपदेश देते हैं। हमें अपना सम्बन्ध उत्तम अथवा उत्तमोत्तम कोटि के मनुष्यों के साथ जोड़ना है, अधमाधम के साथ नहीं। क्या आप जानते हैं कि भगवान् ने हमें उच्च

कुल में किसलिए भेजा है? भगवान् के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए ही भेजा है, न कि अर्थोपार्जन के लिए। हमारे हृदय में केवल अरिहन्त का ही स्थान होना चाहिए, न कि बाह्य भौतिक पदार्थों का। जीवन के केन्द्र में अरिहन्त परमात्मा को ही रखना चाहिए। जीवन में सद्‌गुण का निवास होगा तो धर्म टिका रहेगा। इन छः कोटि के मनुष्य मे से हम कौनसी कोटि में आते हैं? जरा विचार करिए।

***

ज्ञान का अञ्जन

श्रावण वदि २

परिवर्तन आवश्यक कहाँ है?

मानव ने स्वयं के रहन-सहन, व्यवहार आदि में लाखों वर्षों के अन्तराल में बहुत से परिवर्तन किए हैं। क्या पशु-पक्षियों में इस प्रकार का परिवर्तन देखने को मिलता है? लाखों वर्ष पहले भी जिस प्रकार पक्षी अपने रहने के लिए घोंसला बांधते थे उसी प्रकार आज भी बांधते हैं। जबकि मानव वर्षों पहले किस प्रकार के घर का निर्माण करते थे और आज किस प्रकार का निर्माण करते हैं? यह तो जानते हो न? मानव ने स्वयं के बाह्य वैभव में अनेक प्रकार के परिवर्तन किए हैं, किन्तु भीतर के अन्तर्वैभव में किसी प्रकार का परिवर्तन किया है?

सत्संग की गंगा

एक घड़ी आधी घड़ी आधी से पुनी आध।
तुलसी संगत साधु की, कटे कोटि अपराध॥

सज्जन पुरुषों का एक घड़ी अथवा आधी घड़ी जितना भी सत्संग जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन ला देता है।

एक सेठ थे। समृद्धिशाली थे। सेठ की अपेक्षा सेठानी का दिमाग कुछ अलग तरह का था। उसको अपने पति पर ऐसा गर्व था कि मेरे पति के आधार से ही सारा विश्व चल रहा है। एक दिन उस गाँव में कोई सन्त पुरुष पधारे। सन्त पुरुष की वाणी सुनने के लिए सारा गाँव उमड़ पड़ा। सेठ सेठानी को कहते हैं- सन्त पुरुष की वाणी सुनने के लिए चलें? सेठानी कहती है- ओह! ऐसे भामटे की वाणी को सुनने के लिए क्या जाना? यह कहकर उस सन्त पुरुष का वह तिरस्कार करती है। कुछ दिनों के बाद वही बात को सेठ पुनः सेठानी को कहता है और सेठानी वापिस

उस बात को अनसुना कर देती है। अन्त में सेठ पुनः कहता है- खैर वाणी सुनने के लिए नहीं चलेंगे किन्तु वहाँ जाएं तो सही। वहाँ अनेक लोगों से मेल-मिलाप होगा। सेठ के हृदय में यही विचार था कि सेठानी के हृदय में किसी प्रकार परिवर्तन आ जाए। सेठ के बारम्बार कहने पर सेठानी ने थककर अन्त में कह ही दिया- चलो। दोनों वहाँ जाते हैं। सत्पुरुष की वाणी सुनते हैं। उनकी वाणी हृदय में उतर जाती है। **अहंकार ही अंधकार है, यह समस्त वैभव किसके लिए है। केवल अहंकार का पोषण करने के लिए ही तो है।** इस 'अहम्' के उपर ही सारा जगत चलता है। शास्त्रों में अहंकार को पहाड़ कहा है। इस प्रकार का अहंकार रूपी पर्वत जब तक खड़ा रहेगा तब तक भगवान् की वाणी रूपी किरणें जीवन में प्रवेश नहीं कर सकती। इसलिए अहंकार रूपी अंधकार का नाश करो। सेठानी के हृदय का अहंकार दूर होने पर उसको स्वयं ही स्वयं के दुर्गुण आँखों के सामने दिखाई देने लगे। जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया और सेठानी नियमित रूप से उस सन्त की वाणी सुनने के लिए जाने लगी। एक दिन सेठ ने कहा- अरे ओ सेठानी! तुम्हारे भीतर तो बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। अहंकार रहित हो जाने के कारण सेठानी ने उत्तर दिया- मैं तो सुधरी नहीं किन्तु बिगड़ गई हूँ। अब मुझे मेरे सब दोष दिखाई देने लगे हैं। इस प्रकार सत्पुरुष की वाणी की संगति से सेठानी का जीवन निर्मल बन गया। हमारा जीवन ताश के पत्तों के महल के समान है। मृत्यु रूपी पवन के एक झकोरे मात्र से जीवन रूपी पत्तों का महल नष्ट-भ्रष्ट हो जाने में देर नहीं लगेगी।

समझकर संस्कारित हो जाता है वह मानव ....

मानव जन्म की विशेषता और महत्त्व यह है कि स्वयं समझ सकता है और परिवर्तन कर सकता है। सच्ची समझ आने के बाद पापी में पापी दृढ़प्रहारी जैसा मनुष्य भी केवलज्ञान की प्राप्ति तक पहुँच सकता है। दृढ़प्रहारी का नाम इसलिए लेना पड़ा क्योंकि वह बहुत ही हिंसा और

खून खराबा करता था और सबको लूट लेता था। वह दृढ़प्रहारी किसी एक नगर में घूम रहा था। वहाँ एक गली में गरीब ब्राह्मण का घर था। उस ब्राह्मण के घर में उस रोज खीर बन रही थी। लड़के आँख बिछाकर राह देख रहे थे। उसी समय दृढ़प्रहारी उधर से निकलता है और खीर को देखता है। वह खीर झपटने के लिए दौड़ता है। ब्राह्मण उसके दुष्ट भावों को भांप जाता है, क्योंकि स्वयं के लड़के भूख से तिलमिला रहे थे इसलिए वह दृढ़प्रहारी के सामने खड़ा हो जाता है। दृढ़प्रहारी ऐसी सामान्य वस्तु के लिए भी तलवार खींच लेता है, क्योंकि भूख और क्रोध से उसका दिमाग आपे के बाहर चला गया था। उसी समय दृढ़प्रहारी के बीच में गाय आ जाती है। गुस्से से बेकाबू होकर वह गाय पर तलवार चलाकर उसे खत्म कर देता है। उसी समय उसके समक्ष ब्राह्मणी खड़ी हो जाती है। ब्राह्मणी पर भी तलवार चला कर उसे खत्म कर देता है। उस समय ब्राह्मणी गर्भवती थी। ब्राह्मणी और गर्भ दोनों ही तड़पकर मर जाते हैं। दृढ़प्रहारी के इस भयंकर दुष्कृत्य को देखकर उसका सामना करने के लिए ब्राह्मण सामने आता है। वह ब्राह्मण को भी मार गिराता है। शास्त्रों में आने वाली चार महाहत्याएं - ब्रह्महत्या, गौ हत्या, गर्भ हत्या, और स्त्री हत्या यह चार हत्या करने के बाद जहाँ खीर का बर्तन रखा हुआ है वहाँ पहुँचता है। उस समय अपने समक्ष क्रूर हत्याएं देखकर सारे बालक जोर-जोर से रोने लगते हैं। इस दृश्य को देखकर दृढ़प्रहारी के हृदय में गहरा आघात लगता है। उसके समक्ष खून से लथपथ चार शव पड़े हुए हैं। इस बीभत्स दृश्य को देखकर उसका हृदय द्रवित हो उठता है। वह वहाँ से भागता है। उसके इस नीच कृत्य को देखकर लोग उसकी भर्त्सना करते हैं। दृढ़प्रहारी के जीवन में अशांति ही अशांति व्याप्त हो जाती है। घूमते हुए उसे एक साधु महात्मा मिलते हैं। साधु महात्मा कायोत्सर्ग ध्यान में लीन होते हैं, उनकी शांत मुद्रा देखकर दृढ़प्रहारी कहता है- महाराज! मुझे शांति प्रदान करिए। मैं महापापी हूँ अतः मुझे बचाइए। मुनिराज ज्ञान

दृष्टि से देखते हैं- यह कोई महान् आत्मा है अतः उसे धर्मदेशना देते हैं। उनका उपदेश सुनकर उसके हृदय में शांति ही शांति छा जाती है। वह साधु बनता है और प्रतिज्ञा करता है- जिस दिन मुझे मेरे पाप याद आएगें उस रोज मैं आहार-पानी का त्याग कर दूँगा। जिस दिन वह गोचरी के लिए गाँव में जाता है, उसे देखते ही लोग उसे गालियाँ देते हैं और कहते हैं 'यह पापी है, यह पापी जा रहा है'। दृढ़प्रहारी उस पाप को याद नहीं करता है किन्तु लोग पापी-पापी करके उस पाप को याद दिला देते हैं। फलतः वह छः महीने तक आहार-पानी का त्याग कर देता है और अन्त में उसे केवलज्ञान प्राप्त होता है।

यह उदाहरण/दृष्टांत दृष्टि के सामने रखें तो हमें ध्यान आएगा कि मानव जीवन कितना अमूल्य है? इस जीवन में हम क्या नहीं कर सकते। दृढ़प्रहारी जैसा पापी में पापी मनुष्य जब केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है तो उसके पाप के सामने हम वैसे पापी तो नहीं हैं? भगवान् को प्रार्थना करो- आपने ऐसे पापी को केवलज्ञान प्रदान कर दिया तो मैं तो इस प्रकार का कोई पाप नहीं करता, मुझे केवलज्ञान कब मिलेगा? सच्चे दिल की प्रार्थना होने पर वह सफल होती है। सच्चे दिल से पाप का पश्चात्ताप करने पर पापी में पापी मनुष्य भी पवित्र बन जाता है। भगवान् महावीर अर्थात् साक्षात् करुणा की मूर्त्ति। चण्डकौशिक जैसे तिर्यंच जीव का उद्धार करने के लिए स्वयं उसके सामने चले जाते हैं जबकि हम तो स्वयं भगवान् के सामने जाते हैं, तो वे हमें क्यों नहीं तारेंगे?

चेतना - उपयोग.... यह चेतना एक रंगहीन पारदर्शी वस्तु है, उसको जिस प्रकार के पदार्थों का सम्पर्क कराएंगे वैसा ही रंग प्रतीत होगा। सद्गुणों से रंगीन करने पर ही सद्गुण आएंगे और दुर्गुणों से रंगने पर दुर्गुण आएंगे।

शासन-महासद्भाग्य

श्रावण वदि ३

जीव शिव है . . . .

प्रभु के साथ सम्बन्ध जुड़ जाने पर आत्मा के भीतर समस्त गुण प्रकट होने ही चाहिए। शास्त्रकार कहते हैं- **प्रत्येक जीवात्मा परमात्म स्वरूप है।** प्रत्येक जीव परमात्मा होते हुए भी यह जीव पूर्णतः निम्नकोटि का बन गया है, क्योंकि आत्मा के भीतर रहे हुए परमात्मस्वरूप पर अज्ञानरूपी आवरण छा गया है। इस आवरण के दूर होने पर ही परमात्मा के दर्शन होते हैं।

यह जीवन कितना दुर्लभ है . . . .

सोने की खदान में केवल पत्थर ही होते हैं। सामान्यतः देखने पर यह भी खबर नहीं होती की यह सोना है या पत्थर? इस पत्थर के दोनों और लोहे की शिलाएं रख दी जाती हैं। इन लोह खण्ड की शिलाओं के ऊपर मशीन के द्वारा पत्थर पर इस प्रकार का प्रहार किया जाता है कि रेत के समान उसके टुकड़े कर दिए जाते हैं, फिर उस रेती को पानी में डाला जाता है। पानी में जो सोने के कण होते हैं वे भारी होने के कारण नीचे रह जाते हैं और पानी के साथ मिट्टी बह जाती है। उन कणों को एकत्रित कर पाट बनाया जाता है, इस प्रकार यह सोना तैयार होता है। यह सोना भी पृथ्वीकाय का जीव है, हम भी पहले इस काय में थे। पृथ्वीकाय आदि कायों में घूमते-घूमते हमारा अनन्त काल व्यर्थ में गया। आज हमारा महापुण्य का उदय है जिसके कारण हम आज इस भूमिका तक पहुँचे हैं। आज मानव संख्या कितनी है? और जीवाणुओं की संख्या कितनी है? करोड़ो-अरबों की है। हम भी जीवाणुओं की योनि में भटके होगें।

ऐसी तो असंख्य योनियों में यह जीव भटक-भटक कर आया है, अतः अत्यन्त कठिनाई से मिला हुआ यह मानव जन्म व्यर्थ में कैसे गंवाया जा सकता है? **यह मानव जन्म ही ऐसा जन्म है जिसमें मनुष्य अपने हित को साधे तो अजर-अमर बन सकता है।** इस प्रकार की सुविधा क्या किसी अन्य जन्म में है? कबूतर एकदम डरपोक पक्षी कहा जाता है। वह तनिक सी आवाज से डरकर दूर भाग जाता है। जबकि ठठेरों के यहाँ निवास करने वाला कबूतर प्रतिदिन हथौड़े की आवाज सुन-सुन कर ऐसा अभ्यस्त हो जाता है कि वह हथौड़े कि आवाज से डरता भी नहीं है। हम भी संसार के रंगीले वातावरण से ऐसे अभ्यस्त हो गये हैं कि हमारे ऊपर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

मानव जाति का इतिहास . . . .

एक सम्राट बहुत रंगीला था। वह विद्या और कला का प्रेमी भी था। उसने एक दिन विचार किया- मानव जाति का इतिहास लिखवाना चाहिए। ऐसा सोचकर उसने अपने राज्य के समस्त विद्वानों को कहा-मुझे मानव जाति का इतिहास लिखवाना है आप लोग इतिहास लिखें। इतिहास लेखन में आवश्यक समस्त सामग्री आपको प्रदान की जाएगी। यह सुनकर समस्त विद्वान बहुत प्रसन्न हुए। विद्वानों की एक समिति बनाई गई। भिन्न-भिन्न देशों के मानवजाति का इतिहास लिखने के लिए भिन्न-भिन्न पंडितों की समिति बनाई गई। इस इतिहास में गांव-गांव, नगर-नगर, ज्ञाति, कुटुम्ब आदि प्रत्येक का इतिहास लिखना था। अन्त में इतिहास लिखा गया। लिखित इतिहास की पुस्तकें नगर के बाहर सुरक्षित स्थान पर लाई गई। सम्राट कहता है- लाओ, वह इतिहास लाओ। विद्वान् कहते हैं- हे सम्राट! लिखित इतिहास की पुस्तकें यहाँ नहीं लाई जा सकतीं, उनको लाने के लिए तो कई ऊंट गाड़ियाँ भेजनी पड़ेंगी। सम्राट कहता

है- ओह! आपकी लिखित इतनी सारी पुस्तकों को बांचने में तो मेरी यह जिन्दगी भी बहुत छोटी पड़ेगी। मुझे इतना लम्बा इतिहास पढ़ने का समय नहीं है, अतः इसका संक्षिप्तिकरण करके लाइये। विद्वानों ने बहुत कठिन परिश्रम करके उस इतिहास को संक्षिप्त किया। सम्राट ने कहा- वह संक्षिप्त इतिहास लाइए। विद्वानों ने कहा- हमने उस बृहत्कायिक इतिहास का संक्षिप्तीकरण कर दिया है, किन्तु उन्हें लाने के लिए भी वाहन भेजने पड़ेंगे। सम्राट कहता है- मुझे इतनी अधिक पुस्तकें पढ़ने का अवकाश नहीं है, अतः इसे भी आप संक्षिप्त कीजिए। सम्राट की बात को सुनकर विद्वान् लोग उद्विग्न हो गये। कुछ समय पश्चात् राजा बीमार हो गया, बचने की कोई आशा नहीं रही। विद्वानों को यह समाचार मिलने पर उन्होंने विचार किया- अहो! हम पर यह कलंक लग जाएगा कि इन विद्वानों ने राजकोष खाली कर दिया किन्तु इतिहास नहीं लिखा। अतः समस्त विद्वान् मिलकर उस बादशाह के पास गये। बादशाह ने कहा- मेरा अंतिम समय निकट है, इसलिए जो कुछ कहना हो जल्दी कह डालो। विद्वानों ने कहा- बादशाह! सुनो, मनुष्य जन्म लेता है, बड़ा होता है, घर बसाता है, शादी-विवाह करता है, बुड्ढा हो जाता है, घिसता जाता है, घायल हो जाता है, रोने लगता है, और मर जाता है। इस प्रकार केवल इन दो पंक्तियों में ही मानव जाति का पूरा इतिहास आ जाता है।

अर्थ नहीं, शासन प्राप्ति महासद्भाग्य . . . .

विचार कीजिए - अत्यन्त दुर्लभ यह मानव जन्म क्या इसी प्रकार निरर्थक कर देना है? जो इन्द्र को भी अत्यन्त दुर्लभ है वह मानव जन्म हमें बहुत सहजता से प्राप्त हुआ है, इसलिए हम इसकी कीमत नहीं आंक सकते। असंख्यात देव एक साथ देवलोक से च्युत होते हैं, किन्तु उनमें से मनुष्य जन्म तो मर्यादा में ही प्राप्त करते हैं। विचार करो, देव जैसे भी तिर्यंच गति में चले जाते हैं।

शास्त्रकार कहते हैं- **जिसमें आसक्ति होती है वहीं उत्पत्ति होती है।** देवों की आसक्ति सर्वदा विमानों में जड़े हुए रत्न, बावड़ियाँ और उपवनों में ही रहा करती है। इसी कारण वे तिर्यंच गति में चले जाते हैं। कहाँ देवलोक और कहाँ पृथ्वी, पानी और वनस्पतिकाय के जीव। विचार करो, आसक्ति के कारण हम कहाँ फेंक दिये जाते हैं। **सम्पत्ति मिल गई यह कोई बहुत बड़ा भाग्य नहीं है, किन्तु भगवान् महावीर का हमें शासन मिला है यह हमारा बहुत बड़ा सद्भाग्य है। जब संसार की भयानकता हमारे ध्यान में आती है तब ही मानव जन्म के क्षणों की अमूल्यता समझ में आती है।**

धर्म-भावशुद्धि

श्रावण वदि ४

योग्यता के विकास पर सिद्धि . . . .

हमें धर्म का फल क्यों नहीं मिलता है, जानते हो? क्योंकि हम गुणों तक पहुँचते ही नहीं हैं। केवल बाह्य धर्म में ही मग्न रहते हैं। पहले आत्मा को योग्य बनाइये और योग्य बनाने के पश्चात् अभिलाषित कार्यों का चिन्तन कीजिए। योग्य बनना नहीं है और कामनाएँ सिद्ध करनी है, कैसे सिद्ध होंगी? योग्यता होगी तभी मिला हुआ सुरक्षित रह सकेगा, अन्यथा घड़ी के छठे भाग में ही विलीन हो जाएगा। जिनमें पात्रता होती है उनको सब कुछ स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। एक कहावत है- **तू किसी वस्तु के पीछे मत पड़, योग्यता होने पर स्वतः ही खिंच करके तेरे पास चली आएगी।**

शुद्धि प्रतिबिम्ब दिखाती है . . . .

एक राजा था। वह विभिन्न प्रदेशो में घूमता था। घूमते-फिरते उसको यह प्रतीत हुआ की मेरे राज्य में एक वस्तु की कमी है। मेरे राज्य में चित्रशाला नहीं है, अतः बढ़िया से बढ़िया कोई चित्रशाला बनानी चाहिए। राजा ने श्रेष्ठ चित्रकारों को बुलाया और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ चित्रशाला का निर्माण करने के लिए कहा। चित्रकारों के निवास के लिए सुन्दर निवास स्थान की व्यवस्था की गई और सभी चित्रकारों के लिए सभी प्रकार की अलग-अलग व्यवस्था कर दी। निर्माण के लिए एक समय सीमा भी बाँध दी। कुछ समय पश्चात् राजा ने कहलवाया कि मैं कुछ ही दिनों में चित्रशाला के निर्माण कार्य को देखने के लिए आने वाला हूँ। आप अपने चित्रों को तैयार रखें। राजा देखने के लिए जाता है और उन चित्रों की कलात्मकता को देखकर राजा आश्चर्य चकित हो जाता है। इस प्रकार

क्रमशः देखते-देखते वह एक चित्रकार के पास पहुँचता है। राजा वहाँ देखता है कि दीवार खाली है। राजा पूछता है- भाई! इतने दिनों में तूने क्या किया? केवल वेतन ही लेते रहे क्या? चित्रकार कहता है- हे राजन्! मैंने तो इतने दिनों तक इस दीवार को घिस-घिस कर चमका दिया है, क्योंकि पॉलिश की हुई दीवार पर बनाया हुआ चित्र दीर्घकाल तक रहता है, अन्यथा वे चित्र पपड़ी बनकर उखड़ जाते है। दीवार को मैंने दर्पण के समान बना दिया है। कार्य करने वालों के बीच में परदा डालकर जो अलग-अलग विभाग बनाये थे। उन परदों को हटाते ही सामने वाले चित्र का प्रतिबिम्ब इस दीवार पर पड़ने लगा और वैसा ही चित्र दिखाई देने लगा। महापुरुष भी हमें इसी ही बात की शिक्षा देते हैं कि पहले तुम अपनी आत्मा रूपी भींत पर लगे हुए असमानता को घिस-घिस कर के दर्पण के समान बनाओ, उसके बाद उस पर सद्गुण रूपी चित्रों का आलेखन करो। उसके बाद इस चित्र का महत्त्व देखो कि अनन्त काल तक सद्गुणों के संस्कार नष्ट नहीं होंगे/खराब नहीं होंगे। **हम छोड़ने लायक दोषों को पकड़कर रखते हैं**- राग, द्वेष, मान, माया, क्रोध ये दुर्गुण जब तक हमारे घर में बैठे हुए हैं तब तक सद्गुण हमारे पास भी नहीं आयेंगे।

समस्त धर्मों में दान धर्म सर्वश्रेष्ठ कहा गया है, अतः देना सीखो। **समुद्र सब नदियों से जल का संग्रह करता है इसलिए उसका पानी खारा जहर बन गया है और समुद्र का स्थान भी नीचा है, जबकि मेघ काले होने पर भी वे सदा दूसरो को देते हैं इसी कारण इनका स्थान भी ऊँचा है।** सब लोग उसका आतुरता पूर्वक पुनः-पुनः स्मरण करते है। इस अपार संसार समुद्र में हमें जो मनुष्य भव मिला है उसको सार्थक करना चाहिए।

धर्म जीवन की पवित्रता . . . .

धर्म क्या है? हमने धर्म की व्याख्या बहुत ही छोटी सी बना रखी है। सामायिक, पूजा, यात्रा करना, थोड़े बहुत रुपये खर्च करना

आदि, बस इतने में ही हमारा धर्म आ जाता है। शास्त्रकार धर्म की व्याख्या पृथक्-पृथक् रूप से करते हैं। धर्म अर्थात् सर्वप्रथम वाणी, व्यवहार और विचार में शुद्धि होनी चाहिए। अन्याय, अनीति, छल, प्रपंच से इकट्ठे किए हुए रुपये खर्च करने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह कोई बहुत बड़ा दानवीर धर्मात्मा है। श्रावक के प्रथम गुण में न्याय-सम्पन्न वैभव कहा गया है। **जीवन की पवित्रता धर्म का प्रथम चरण है ...** इस प्रकार का धर्म ही आराधना रूपी धर्म कहलाता है। वर्तमान में तो हम इन क्रिया-कांडो में इतने तन्मय हो गये हैं और इसी को धर्म का सच्चा स्वरूप समझ बैठे हैं। मन, वचन और काया को जो शुद्ध करती है वह क्रिया कहलाती है। धर्म सब कुछ प्रदान करता है। वास्तविक रूप में सच्चे धर्म को करेंगे तो वह धर्म हमारे जीवन की आवश्यक वस्तुओं को पूर्ण कर देगा। पग-पग पर धर्म के साथ धन की भी जरूरत पड़ती है। परलोक तो दूर है... पहले तो इस लोक में आवश्यकताएं खड़ी होंगी उसका क्या करोगे? इसके उत्तर में कहते हैं- धर्म इस लोक का सुधार करता है, परलोक का सुधार करता है और अन्त में मोक्ष प्रदान करता है। **आज हमें जितना द्रव्य पर विश्वास है, जैसे सौ रुपये का नोट लेकर जाएगें तो उसके बदले में सौ रुपये ही मिलने वाले हैं। ऐसा विश्वास सर्वपापों का नाश करने वाले, सर्व मंगलों में प्रथम मंगल इस नवकार मंत्र पर है क्या?** नहीं है। विश्वास नहीं है इसीलिए हमारा मन भी नवकारवाली में नहीं लगता है। कदाचित् सौ रुपये के नोट को सरकार निरस्त करती है तो वह कागज का टुकड़ा मूल्य रहित बन जाता है, किन्तु नवकार मन्त्र के लाभ को कोई निरस्त करने वाला है? किसी भी काल में नहीं है। यह धर्म अर्थ और काम को देता है तथा आरोग्य को भी देता है। **अभिलाषा किस बात की है- आरोग्य की अथवा दवा की? आरोग्य की ही होगी तो दवा का स्मरण कौन करेगा? वैसे ही तन्मयता धर्म की है**

या धन की? धर्म का ही स्मरण/ध्यान होना चाहिए किन्तु हम सर्वदा धन के लोभ में ही डूबे रहते हैं।

बिन्दु की शक्ति ....

धर्म का एक बिन्दु भी मानव के लिए संसार समुद्र का तारकहार बन जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि विशाल संसार समुद्र के समक्ष एक बिन्दु क्या कर सकेगा? किन्तु नहीं, बिन्दु से बहुत कुछ हो सकता है। अमृत का एक बिन्दु भी मानव को समस्त दोषों से विकारों से मुक्त कर सकता है। अरे, मृत्यु शय्या पर पड़े हुए व्यक्ति को भी वह बिठा देती है। उसी प्रकार जहर का एक बिन्दु भी कौनसा अनर्थ नहीं कर सकता? धर्म की एक बिन्दु को भी जीवन में बराबर उतार लिया जाए और उसके स्वाद का अनुभव किया जाए तो सिर्फ यही जन्म नहीं कई जन्म सुधर सकते हैं। इस धर्म के बिन्दु में इतनी विपुल शक्ति है कि धन की अभिलाषा हो तो वह धन देता है और काम का अभिलाषी हो तो वह काम भी देता है। यह धर्म सब कुछ देगा और अन्त में मोक्ष भी देगा।

धर्म किसे कहें?

धर्म किसे कहें? शास्त्रकारों के वचनानुसार सद्गुणों-सत्कार्यों का अनुष्ठान ही धर्म है और यह अनुष्ठान मैत्री आदि चार भावों से युक्त होना चाहिए। मैत्री अर्थात् परहित की चिंता और अन्य के सुख का विचार ही मैत्री कहलाती है। आज सर्वत्र स्वयं के स्वार्थ की ही विचारणा होती है। दिल्ली के एक किराने के व्यापारी जिसका नाम लवजी था। वह धर्म की खूब चर्चा-विचारणा करता था। इसकी पूरी मण्डली थी। इस मण्डली में मावजी नामक सामान्य व्यक्ति भी आता था। एक समय मावजी किसी कारणवश बाहर गांव गये थे। वापस लौटे तो उनकी पत्नी ने ऐसा सोचा कि मेरे पति बाहर गांव से आये हैं तो आज हलवा बनाया जाए, किन्तु घर में गुड़ नहीं था। मावजी की पत्नी लवजी भाई की दुकान पर गुड़ लेने गई। उसको पूर्ण विश्वास था कि लवजी भाई

ने जैसा गुड़ दिया है, वह अच्छा ही होगा। उस गुड़ को लेकर वह अपने घर आई और हलवा बनाया। खाते समय उस हलवे में बारम्बार कंकर आने लगे, देखा तो वह गुड़ कंकर वाला ही था। मावजी भाई उठकर के शीघ्र ही लवजी भाई की दुकान पर गये और गुड़ वापिस लेने के लिए कहा। लवजी भाई गुस्से में तड़ककर बोले-भाई! मैं यहाँ व्यापार करने बैठा हूँ, तेरा गुड़ नाली में फेंक दे। यदि इसी प्रकार वस्तुओं का मैं परिवर्तन करता रहा, तो मेरा व्यापार ठप्प हो जाएगा। यह सुनकर मावजी भाई तो स्तब्ध हो गये। अरे, धर्म की बड़ी-बड़ी बाते करने वाले लवजी भाई कहाँ और कहाँ उनका यह व्यवहार? जिसकी नींव ही न हो उसको धर्म कैसे कह सकते है? **धर्म करने वाला नीतिमान होना चाहिए। धर्म का पहला लक्षण है मैत्री अर्थात् परहित चिंता। दूसरा लक्षण है दूसरों को सुखी देखकर प्रमुदित होना। तीसरा लक्षण है कारुण्य अर्थात् दूसरों के दुःख को देखकर मन द्रवित हो उठे। चौथा लक्षण है माध्यस्थ्य अर्थात् उपेक्षा भाव।**

भाव का प्रभाव ....

एक राजा था। अकेला ही घूमने के लिए निकलता है। बहुत जोर की प्यास लगती है। फिरता-फिरता किसी खेत में चला जाता है। पहले के समय में जनता सुखी है या दुःखी इसकी जानकारी लेने के लिए राजा स्वयं ही सामान्य वेश पहन कर अकेला ही निकल पड़ता था। प्रजावत्सल राजा थे और गुप्त रीति से प्रजा के सुख-दुःख को जानने का प्रयत्न करते थे। खेत में जाकर राजा ने घोड़े को खड़ा किया, वहाँ एक झोंपड़ी थी राजा ने किसान को कहा- भाई प्यास लगी है पानी पिलाओ। यह खेत गन्ने का था। सांठे से रस निकालकर राजा को दिया। राजा तो पीकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। राजा ने किसान को पूछा- भाई, कैसी कमाई हो रही है? किसान ने सर्वस्वभाव से कहा- भाई, राजा की कृपा से इसमें हमें बहुत कुछ मिलता है। किसान की बात सुनकर राजा का मन डांवाडोल

हुआ और वह विचार करने लगा। अरे! इसमें तो बहुत कमाई है, इन लोगो के पास से मैं बहुत कुछ कमा सकता हूँ। इनकी बदौलत तो मेरा भंडार अखूट बन जाएगा। थोड़ी देर बैठने के बाद राजा ने फिर रस का गिलास माँगा। किसान सांठे को पीलकर रस निकालने गया। बहुत समय लग गया। जब पूरा सांठा पिल गया तब मुश्किल से एक गिलास रस निकला। राजा को दिया। राजा ने पूछा- इतना समय कैसे लगा? खबर नहीं कौन जाने पहले तो एक छोटे से टुकड़े मे से पूरा गिलास भर गया था किन्तु अभी तो सारे सांठे को पिलने के बाद मुश्किल से गिलास भर पाया है। भूमि के मालिक के हृदय में/विचारों में कुछ परिवर्तन हुआ होगा इसलिए ऐसा बन गया है। किसान को खबर नहीं थी कि यह राजा है। राजा को झटका लगा कि मेरे अशुद्ध विचारों से धरती से रस चला गया। उसे अत्यन्त खेद हुआ। राजा के विचार पुनः बदल गये और उसने फिर एक गिलास रस माँगा। थोड़े समय में ही गिलास भर गया। विचारों में कितनी शक्ति होती है?

इसी प्रकार **दूसरों को सुखी देखकर आनन्दित होओगे तो तुम्हारे यहाँ भी अखूट सम्पत्ति हो जाएगी, किन्तु दूसरे के सुख को हरण करने का व्यवहार जीवन में घुस जाएगा तब तो जो आया है वह भी चला जाएगा।**

भूल करना यह तो मनुष्य का स्वभाव है,
परन्तु भूल करने के बाद
उसको स्वीकार करना यही उत्तम है।

प्रवासी

श्रावण वदि ५

सिकन्दर का अन्तिम संदेश ....

संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ मनुष्य अजर-अमर बन जाता हो। भले ही वह चक्रवर्ती के स्थान पर हो अथवा किसी राजा महाराजा के स्थान पर हो। इस जगत् में सिकन्दर नाम का सम्राट हुआ। उसके समय में भारत का स्थान कैसा था? विश्व के लोग ऐसा कहते थे कि 'मनुष्य जीवन कैसे जीना चाहिए! यह यदि जानना है तो भारत में जाना चाहिए। किन्तु इस समय तो कितने ही हिन्दु भी शराब, जुआ, माँस के व्यसनी बन गये हैं। **पूर्व समय में पश्चिमी लोग हमारा अनुसरण करते थे जबकि आज हम लोग पश्चिम आदि देशों के तुच्छ तत्त्वों का अनुसरण कर रहे हैं।** ग्रीष्म ऋतु में यह सिकन्दर सेना लेकर हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने के लिए आया था, उस समय सिन्ध के किनारे पर आपस में समझौता होने के कारण वह वापस लौटने की तैयारी कर रहा था। उस समय सिकन्दर अपने विश्वस्त आदमियों से कहता है कि हमें अब यहाँ से वापस लौटना है, इसलिए किसी सन्त पुरुष को तुम लोग ले आओ। क्योंकि, जिस समय मैं सेना लेकर निकला था उस समय मेरे गुरु ने मुझे कहा था की विजय प्राप्त करके जब लौटो उस समय हिन्दुस्तान के किसी सन्त को साथ ले आना।' सिकन्दर के आदमी सन्त की खोज करते हैं। जंगल में कोई मुनि मिल जाते हैं, दूत उनके पास पहुँचते है और कहते हैं- आपको सम्राट सिकन्दर बुला रहे हैं। मुनि कहते हैं- यह सिकन्दर किस जाति का प्राणी है? मैं उसे पहचानता नहीं हूँ। मुझे तुम्हारे सिकन्दर के पास जाना भी नहीं है। जाओ सिकन्दर को कह दो- 'मिलना है तो यहाँ आकर मिल ले।' मुनि का संदेश दूतों ने सिकन्दर को कहा।

सिकन्दर वहाँ आता है और कहता है- मेरे साथ चलिए। मुनि साथ चलने को तैयार नहीं होते हैं। सिकन्दर को अहंकार के कारण क्रोध आता है और कहता है- चलते हो या नहीं? मुनि आत्मबली थे। वे कहते हैं- सिकन्दर, तुम भले ही अपनी तलवार चलाओ! आत्मा ऐसी अमर है कि इसका किसी भी शस्त्र से वध नहीं हो सकता, इसे कोई जला नहीं सकता। न तो यह जल से भीगती है और न ही पवन से सूखती है। मुनि के उक्त वचन सुनते ही सिकन्दर का घमण्ड चूर-चूर हो जाता है, हाथ से तलवार गिर पड़ती है और वह मुनि से माफी माँगता है। अन्त में अनुनय-विनय के साथ उस मुनि को सिकन्दर अपने साथ ले जाता है। एक समय सिकन्दर बीमार हो जाता है, बचने की कोई उम्मीद नहीं रहती है, उस समय वह अपने निकट के आदमियों के समक्ष अपनी अन्तिम इच्छा बतलाता है- जब तुम लोग मेरा जनाजा/शव यात्रा/ अर्थी निकालो उस समय मेरी अर्थी के आगे खुली तलवार वाली सेना को रखना, वैद्य, हकीम, खजानची आदि मेरे अर्थी के चारों ओर चलें। मेरे दोनों खुले हाथ कफन के बाहर रखना और उद्घोषणा करना- सम्पूर्ण पृथ्वी का अधिपति सिकन्दर जा रहा है, उसको सशस्त्र सेना, ये वैद्य, और यह हकीम कोई भी बचा नहीं सके हैं। यह इसलिए आवश्यक है कि जनता मेरी जीवन गाथा से यह ज्ञान प्राप्त कर ले कि **मनुष्य कुछ साथ लेकर नहीं आया है और न ही कुछ साथ लेकर जाने वाला है, अपने साथ केवल पाप और पुण्य को ही ले जाता है।** शास्त्रकार उदरपूर्त्ति हेतु भागदौड़ करने कि मनाही नहीं करते हैं, वे मनाही करते हैं तो पिटारा/खजाना भरने के लिए।

सूई को साथ लाना . . . .

पंजाब की बात है। गुरु नानक घूमते हुए एक स्थान पर पहुँचे। वहाँ कोई धनवान मनुष्य रहता था। गुरु नानक प्रवचन दे रहे थे वह धनवान व्यक्ति भी प्रवचन सुन रहा था। प्रवचन पूर्ण होने पर वह धनी मनुष्य गुरु नानक से कहता है- साहेब! कोई कार्य हो तो कहिएगा।

धनिक ने सोचा था कि पाँच-पचास रुपये खर्च करने पर यदि मैं गुरु की नजरों में आ जाता हूँ तो मेरा काम बन जाएगा। गुरु नानक कहते हैं- भाई! एक काम है। मेरे पास एक सूई है, वह सूई मैं तुम्हे सम्भालकर रखने के लिए देता हूँ। मै जब परलोक में जाऊं और तुम भी परलोक में आओ तो यह सूई साथ में लेकर आना। धनी व्यक्ति सोच-विचार में पड़ जाता है और कहता है, गुरुजी यह कार्य तो नहीं हो सकता। गुरु नानक कहते हैं- हे भाई! जब तू एक सूई भी साथ में लेकर के नहीं जा सकता तो इस ऐश्वर्य के पीछे अपना समय क्यों नष्ट कर रहा है? यह सुनते ही उस धनी का घमण्ड और पैसे पर ममत्व समाप्त हो जाता है, तथा वह अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करने लगता है।

परलोक ....

मनुष्य मृत्यु प्राप्त होने पर तीन वस्तुएं साथ लेकर जाता है- पुण्य, पाप और संस्कार। संस्कार में विनय, विवेक, सदाचार, क्षमा, और परोपकार सबसे अधिक महत्व के हैं। यहाँ से हम जहाँ भी जाएगें वहाँ पूर्वजनित संस्कारों पर ही हमारे जीवन की रचना होगी। किसी के जन्म से ही यह संस्कार होते हैं कि वह दूसरों को लूट लेता है, जबकि किसी के संस्कार किसी को देने के होते हैं, कोई अभिमानी होता है, कोई नम्र स्वभाव का होता है। यह सब स्वभाव पूर्व के संस्कारों पर ही आधारित होते हैं। पुण्य से सुख मिलेगा, पाप से दुःख मिलेगा और श्रेष्ठ संस्कारों से जीवन उज्ज्वल बनेगा। अच्छे संस्कार कैसे प्राप्त हों, यह हमारे हाथ की बात है। सुख-प्राप्ति और दुःखों से निवृत्ति यह भी हमारे ही हाथ की बात है।

> दूसरे को सुखी देखकर जो प्रसन्न होता है वहाँ सम्पत्ति अखूट रहती है, किन्तु दूसरों को लूटने का व्यवहार अपने जीवन में रखता है तो जो प्राप्त हुआ है वह भी चला जाता है।

रुडी ने रढियाळी रे

(सुन्दर और मनमोहक)

श्रावण वदि ६

करुणा का एक आयाम . . . .

हमारे ऊपर भगवान् ने कितनी अपार करुणा की है हमको भूख और प्यास तथा अनेक प्रकार की वेदनाओं से पीडित तिर्यंच पंचेन्द्रिय के बीच में रखा है जबकि देवलोक में अकेले देव रहते हैं। वहाँ कोई मनुष्य नहीं होता और न किसी प्रकार की यातना से पीडित दूसरे जीव होते हैं। देवों की आँखो के सामने केवल सुख ही सुख दिखाई देता है और हमारी आँखों के सामने यातनाओं से पीड़ित जीव दिखाई देते हैं। दूसरी योनि के दु:खों को दिखलाने में भी भगवान् की करुणा है। हमको आँखो के सामने दिखाई देता है कि संसार कैसा है? यदि हम पाप करेंगे तो आँखे बंद होने पर हमारे समक्ष ये तिर्यंच आदि योनियां पड़ी ही हैं। प्रात: उठने के साथ ही हम केवल खाना-पीना, मौज-शौक का ही विचार करते हैं। **हमको संसार में भय लगता है, इसलिए हम धर्म करते हैं या संसार को मधुर बनाने के लिए हम धर्म क्रिया करते हैं? यह संसार एक कड़वी नीम की वेलड़ी है, यह कभी मीठी नहीं बन सकती।** जो यह संसार मधुर बन सकता तो धन्ना, शालिभद्र और थावच्चापुत्र आदि घर-द्वार नहीं छोड़ते।

थावच्चापुत्र . . . .

थावच्चाबाई का राज दरबार में बहुत अच्छा मान था। वह द्वारिका नगरी में रहती थी। विधवा थी। करोड़ों रुपयों का व्यापार करती थी। द्वारिका नगरी में उसका नाम था। उसका एक पुत्र था जो थावच्चापुत्र के नाम से पहचाना जाता था। थावच्चापुत्र का युवावस्था में विवाह भी हो गया था, देवांगनाओं जैसी उसकी स्त्रियाँ थीं। दोगुन्दक देवों के समान वह

सुख भोगता था। एक समय भगवान् नेमिनाथ द्वारिका में पधारते हैं। थावच्चापुत्र उनकी देशना सुनने के लिए जाता है, उपदेश सुनता है।

देशना ....

भगवान् कहते हैं- भव्यात्माओ! यह जीवात्मा मनुष्य योनि में एक बार नहीं अपितु अनन्त बार आ चुका है, किन्तु धर्मरहित होने के कारण वापस इन्हीं पशु आदि योनियों में भटकता रहता है। बस- **पुनरपि जननं पुनरपि मरणं - पुनरपि जननीजठरे शयनम्।** अर्थात् बारम्बार जन्म लेना- बारम्बार मरना और बारम्बार माता के उदर में शयन करना। मनुष्य ऐसा मानता है कि धर्म के पीछे बहुत कुछ त्यागना पड़ता है/भोग देना पड़ता है। किन्तु, धर्म की अपेक्षा संसार में मन का, वचन का और वाणी का बहुत भोग देना पड़ता है। **त्याग कठिन नहीं है, किन्तु उसका ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है।** किसी मनुष्य को बीड़ी त्याग करने को कहते हैं तो वह कहेगा- इसके छोड़ने से मुझे ऐसा हो जाएगा, वैसा हो जाएगा, इस प्रकार बातें करेगा, किन्तु जब उसी व्यक्ति को डॉक्टर कहेगा- भाई! तु यदि बीड़ी नहीं छोड़ेगा तो तुझे कैंसर हो जाएगा। यह समझ में आते ही वह बीड़ी छोड़ देता है। इस प्रकार त्याग करना कठिन नहीं होता है किन्तु उसके लिए ज्ञान की प्राप्ति अवश्य ही कठिन है।

देशना के तीन बिन्दु ....

जहा जीवा बज्झंति - जीव किस प्रकार बंधन प्राप्त करते हैं।
जहा जीवा किलिस्संति - जीव किस प्रकार क्लेश प्राप्त करते हैं।
जहा जीवा मुच्चंति - जीव किस प्रकार मुक्ति प्राप्त करते हैं।

भगवान् की देशना इस तीन बिन्दुओं के आधार पर ही चलती है। मोहराजा पहले तो जीवों को बंधन में डालता है और बाद में अत्यन्त दु:खित करता है। समृद्धि का गर्व और आसक्ति मनुष्य को कहाँ ले जाकर पटकती है? चक्रवर्ती जैसा चक्रवर्ती यदि राज्य वैभव को नहीं छोड़ता है तो वह सातवीं नरक में जाता है और यदि उसका त्याग कर

देता है तो वह मोक्ष में जाता है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ऐश्वर्य में लुब्ध होने के कारण सातवीं नरक में जाता है और उसकी रानी (कुरुमती) छट्ठी नरक में जाती है। देखो, वैभव और आसक्ति का ऐसा दारुण परिणाम? भगवान् कहते हैं- यदि तुम्हें अजर-अमर बनना है तो सिद्धि पद की आराधना करो। **जीव पहले राग, द्वेष, मोह-माया आदि से बंधा हुआ होने के कारण दुर्गति में चला जाता है। जो जीव इस बंधन में से छूट जाता है, वह क्लेश से मुक्त हो जाता है और क्लेश से मुक्त होने पर वह सीधा मुक्ति में चला जाता है।** प्रभु की उक्त देशना को सुनकर थावच्चापुत्र चोंक उठता है। क्या यह वैभव मुझे दुर्गति में ले जाएगा? देशना पूर्ण होती है। हम देशना को सुनते अवश्य हैं किन्तु कान से सुनते हैं, हृदय से नहीं। हृदय से जब देशना सुनते हैं तो ही हम उसकी कीमत समझ सकते हैं। अंधेरे को दूर करने के लिए बहुत बड़े प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती उसके लिए तो केवल एक किरण ही काफी है।

रोज व्याख्यान सुनने वाले एक सेठ प्रतिदिन व्याख्यान में आते हैं और पहले आकर बैठ जाते हैं। एक दिन सेठ को विलम्ब हो गया। गुरु महाराज ने पूछा- सेठ! आज विलम्ब से कैसे आए हो? सेठ कहता है- महाराज! मैं आज अपने छोटे बालक को समझा रहा था। वह हठ कर रहा था कि मैं भी आपके साथ चलूंगा। गुरु महाराज ने कहा तो उस बालक को साथ ले आते न? सेठ ने कहा-गुरुदेव उसका काम नहीं है। साहेब! हमारी छाती मजबूत है, लड़के की छाती कोमल होती है.... हम सुनते हैं तो हमारे ऊपर देशना का कोई असर नहीं होता है। यदि वह छोटा बालक देशना सुनकर वैराग्य के रंग में रंग जाए तो? देखा न, कैसे हैं आज के श्रावक!

वाणी सुनने से वैराग्य का उद्‌भव ....

थावच्चापुत्र ने हृदय लगाकर भगवान् की देशना सुनी थी। एक ही देशना में उसको संसार का स्वरूप भयानक लगा। वहाँ से आकर अपनी

माता को कहता है- माताजी! मुझे संयम लेना है। पुत्र के मुख से संयम शब्द सुनते ही इसकी माता मूर्छित हो गई। क्योंकि, यह सारा ऐश्वर्य और वैभव पुत्र के लिए तो उसने संचित किया था। करोड़ो की सम्पत्ति थी, एक ही पुत्र था। मूर्छा दूर होने पर वह अपने पुत्र को समझाती है- पुत्र! संयम अत्यन्त दुष्कर है। पुत्र! साधु जीवन में बाईस परिषह सहन करने पड़ते हैं। पुत्र कहता है- माता! संसार में तो बाईस से अधिक परिषह हैं। उन पर विजय प्राप्त करना उससे भी कठिन है। आत्मा में ही परमात्मा का निवास है। माता और पुत्र के बीच में संवाद चलता है और अन्त में पुत्र ही विजयी होता है। माँ थककर कृष्ण महाराज के पास पहुँचती है। कृष्ण पूछते हैं- सेठानी! कैसे आना हुआ? थावच्चा कहती है, मेरे पास अखूट सम्पत्ति है। मेरा पुत्र संयम ग्रहण करने के लिए तैयार हो गया है, आप उसे किसी प्रकार समझाइये। कृष्ण महाराज थावच्चापुत्र को समझाते हुए कहते हैं- हे भाई! तुझे क्या दुःख है? तेरे पास सब कुछ है, तेरे मन में किसी प्रकार की आशंका या डर हो तो उसे निकाल फैंक। तेरे ऊपर तो मैं नाथ/स्वामी के रूप में बैठा हुआ हूँ। थावच्चापुत्र कहता है- महाराज! देखिए, मैं आपकी बात स्वीकार करने को तैयार हूँ। आप यदि मेरी इतनी जिम्मेदारी ले लें- मेरा मृत्यु से रक्षण करें, जरा से रक्षण करें, जन्म से रक्षण करें। बोलिए क्या आप इसके लिए तैयार हैं? तब कृष्ण महाराज कहते हैं- भाई! मृत्यु से तो मैं अपना भी रक्षण नहीं कर सकता तो दूसरे का रक्षण कैसे करूंगा? थावच्चापुत्र कहता है- महाराज मेरे तो स्वामी ऐसे हैं जो आधि-व्याधि-उपाधि सब से रक्षण कर सकते हैं। मैने तो ऐसे स्वामी की ही शरण स्वीकार की है। बस आप तो मुझे अपने मार्ग पर जाने की आज्ञा दें। कृष्ण महाराज वार्तालाप से यह अनुभव करते हैं कि यह समझ करके वैराग्य भाव से ही दीक्षा ग्रहण कर रहा है, इसको इस मार्ग से दूर रखना सम्भव नहीं है। अतः कृष्ण महाराज उसे आज्ञा प्रदान करते हुए कहते हैं- दीक्षा का वरघोड़ा/महोत्सव मेरी तरफ से होगा। इतना ही

नहीं, नगर में यह ढिंढोरा पिटवाते हैं, घोषणा करवाते हैं कि थावच्चापुत्र दीक्षा ग्रहण करने जा रहे हैं, जिस किसी को भी इस मार्ग पर जाना हो प्रसन्नता से जा सकता है। उसके पीछे से उसके परिवार का भरण-पोषण मैं करूंगा। इस घोषणा से प्रभावित होकर एक हजार मनुष्य भी दीक्षा लेने को तैयार होते हैं। सबके साथ दीक्षा ग्रहण करता है और अन्त में एक हजार शिष्यों के साथ थावच्चापुत्र का शत्रुंजय तीर्थ पर मोक्ष होता है। पहले के जीव लघुकर्मी थे। एक देशना सुनने मात्र से ही संसार छोड़ने के लिए तैयार हो जाते थे। द्रव्य रूपी जवाहरात दुःखों से मुक्त नहीं कर सकते अथवा सुख प्रदान नहीं कर सकते, बल्कि आपत्तियों को खींच कर लाते हैं और दुःख के गर्त में डूबा देते हैं। जबकि धर्म रूपी जवाहरात समस्त दुःखों से मुक्त कराते हैं और अन्त में मोक्ष सुख प्रदान करते हैं।

गुरुतत्त्व का महत्त्व ....

देवतत्त्व और धर्मतत्त्व को समझाने वाले गुरु होते हैं। **देवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।** देव रुष्ट हो गये तो गुरु बचा लेंगे परन्तु यदि स्वयं गुरु रुष्ट हो गये तो कोई भी बचा नहीं सकता। गुरुतत्त्व के द्वारा समस्त गुणों की प्राप्ति हो सकती है। तीर्थङ्कर परमात्माओं का यह सम्पूर्ण शासन गुरुतत्त्व पर ही चल रहा है क्योंकि तीर्थंकर भगवान् स्वयं कितने समय तक शासन कर सकते हैं? जगत् में तीन तत्त्व महान् हैं। देवतत्त्व, गुरुतत्त्व और धर्मतत्त्व - ये तीनों ही तत्त्व यदि जीवन के साथ जुड़ जाएँ तो जीवन धन्य बन जाए।

तृष्णा सदा बढ़ती ही है यह कभी घटती नहीं है।
सदा घटने वाली वस्तु है आयुष्य।
त्याग कठिन नहीं है किन्तु उसके
लिये ज्ञान प्रात करना कठिन है।

धर्म-मंगल

श्रावण वदि ७

मंगल की व्याख्या . . . .

मनुष्य कोई भी कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व मंगल वाक्यों से प्रारम्भ करता है, यह किस लिए? क्योंकि मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन मंगल पर आधारित है, रचित है। प्रारम्भ में मंगल वाक्य देने से कोई भी कार्य निर्विघ्नता के साथ पूर्ण होता है। मंगल चार प्रकार के हैं– १. नाम मंगल, २. स्थापना मंगल, ३. द्रव्य मंगल, ४. भाव मंगल।

नाम मंगल – किसी का नाम मंगल स्वरूप होता है

स्थापना मंगल – कुम्भ, घड़ा, आकृति आदि

द्रव्य मंगल – लोक में औपचारिक रूप से दही, गुड़ आदि

भाव मंगल – परमात्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध

मंगल शब्द की व्याख्या शास्त्रकारों ने दो प्रकार से की है। अक्षरों को तोड़कर की हुई व्याख्या को निरुक्त कहते हैं और धातु आदि जोड़कर जो व्याख्या की जाती है उसे व्युत्पत्ति कहते हैं। जैसे– हिन्दु शब्द है– **हि** अर्थात् हिंसा, और **दू** याने दूर रहने वाला, हिंसा से दूर रहने वाला हिन्दू कहलाता है इसे निरुक्त कहते हैं।

मं इसका अर्थ है– **मथ्नाति विघ्नानि** अर्थात् जो समस्त विघ्नों का मंथन कर देता है। मनुष्य जब दुःख में होता है, तो उसकी सर्वप्रथम इच्छा क्या होती है? बस, मेरा दुःख दूर हो यही इच्छा होती है। मंगल में अपूर्व शक्ति है कि वह विघ्न रूपी भयंकर पर्वतों को भी चूर्ण-चूर्ण कर देता है।

ग इसका अर्थ है– **गमयति सुखम्** अर्थात् सुख की ओर ले जाने वाला। पहली इच्छा पूर्ण होने पर बाद में इच्छा होती है कि अब मुझे सुख प्राप्त हो। मंगल में समस्त सुखों को प्रदान करने की शक्ति है।

ल इसका अर्थ है- **लालयति सुखे** अर्थात् सुखों में लालन-पालन कराने वाला। दुसरी इच्छा पूर्ण हुई और सुख भी मिल गया, किन्तु उस सटोरिये के सुख जैसे सुख का क्या करना है? जो आज सट्टे में लाखों रुपये कमाए और कुछ ही दिनों में लाखों रुपये हार भी गए, ऐसे क्षणिक सुख का क्या करना? इसलिए मनुष्य की तीसरी इच्छा होती है कि प्राप्त सुख सदा के लिए रहे। इस प्रकार मंगल शब्द में ऐसी अपूर्व शक्ति होती है, पहले दु:ख दूर कर सुख प्रदान करता है और उस सुख में मनुष्यों का पालन करता है। यह मंगल शब्द की निरुक्ति हुई। व्युत्पति अर्थात् **मां गालयति पापात्** मुझे पाप से छुड़ाने वाला। इन चारों मंगलों में भाव मंगल ही सर्वोत्कृष्ट मंगल है। प्रारम्भ के नाम, स्थापना, द्रव्य इन तीनों मंगलों से मंगल हो या नहीं हो, किन्तु भाव मंगल से परमात्मा के साथ अभिन्न सम्बन्ध बन जाए वही सच्चा मंगल कहलाता है।

पारसमणि . . . .

धर्म पारसमणि के समान है। पारसमणि के स्पर्श से लोहखण्ड भी सोना बन जाता है। एक सन्त पुरुष थे। उनके पास एक पारसमणि था। उस संत को उसकी कोई आवश्यकता नहीं थी, किन्तु किसी ने उनको भेंट स्वरूप प्रदान की थी इसलिए पारसमणि को लोहे की डिब्बी में रखकर स्वयं प्रभु के भजन में तन्मय रहते थे। एक समय उस संत की सेवा करने के लिए एक मनुष्य आया। दीन-दु:खियों का उद्धार करने में वह संत सर्वदा तत्पर रहता था। सेवा में आगत मनुष्य दु:खी नहीं था किन्तु असंतोषी/ लोभी था। उसको तो धन के भंडार भरने थे। एक समय संत ने उसकी सेवा से प्रसन्न होकर कहा- **जा बच्चा, तेरा कल्याण हो जाएगा,** किन्तु उस सेवक को तो कल्याण की आवश्यकता नहीं थी। वह तो सोने का भंडार चाहता था। उसने संत को कहा- मुझे तो सोना, धन चाहिए। सारा जगत् सोने के पीछे पागल बना हुआ है। कहा जाता है-

यस्यास्ति वित्तं नरः कुलीनः स एव वक्ता स च दर्शनीयः।
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते॥

अर्थात् जिसके पास विपुल धन होता है वही व्यक्ति कुलीन, वक्ता, दर्शनीय, पंडित, ज्ञानी और गुणवान होता है क्योंकि सब गुण कंचन/सोने के आश्रित होते हैं। धन के बिना सब कुछ शून्य होता है।

बाबाजी ने कहा– भाई! तुझे यदि सोने का भंडार चाहिए तो मेरे पास में जो पारसमणि है वह मैं तुझे देता हूँ। उस ओर सामने लोहे के डिब्बे में पारसमणि रखा हुआ है, वह लोहे का डब्बा लेकर के आ। वह धनलोभी मनुष्य उस डिब्बे को लेने के लिए गया। उसने सोचा कि पारसमणि लोहे के डिब्बे में कैसे रह सकता है? क्योंकि उसके स्पर्श मात्र से लोहखण्ड सोने का बन जाता है तथा यह डिब्बा लोहे का कैसे? कहीं ये बाबाजी मुझे धोखा तो नहीं दे रहे हैं। वह मनुष्य अपने विचारों में ही पड़ा रहा। बाबाजी तत्काल उठे और डिब्बे में से पारसमणि निकालकर उस लोहखण्ड के टुकड़े को स्पर्श कराया। तुरन्त ही वह लोहे का डिब्बा सोने का बन गया। यह देखकर उस मनुष्य ने उनसे पूछा– बाबाजी! यह कैसे हो गया? यह डिब्बा तो लोहे का है सोने का क्यों नहीं बना? बाबाजी ने कहा– भाई, वर्षों से यह मणि उसी स्थान पर पड़ा हुआ है, इस डिब्बे के चारों और जाले ही जाले छा गये हैं। इन जालों के ऊपर पारसमणि रखा हुआ है। यह मणि डिब्बे को छूता नहीं है इसलिए यह डिब्बा सोने का नहीं बना। यह देखकर वह धन लोभी सेवक आश्चर्य चकित रह गया और तत्काल ही बोला– अरे बाबाजी! ऐसी पारसमणि होने पर भी इसे आप तिजोरी में सम्भालकर क्यों नहीं रखते? बाबाजी कहते हैं- भाई, इसकी कोई कीमत ही नहीं है। सच्चा पारसमणि तो भगवान् का नाम है जो मेरे पास है, इस काँच के टुकड़े को कौन हाथ लगाता है? यह सुनते ही उस धनलोभी सेवक के मानसिक विचार एकदम बदल जाते हैं और वह स्वयं सन्यास धर्म स्वीकार कर लेता है। यह धर्म रूपी पारसमणि हमारे पास

होने पर भी हम स्वयं स्वर्णमय क्यों नहीं बने? क्योंकि उस वास्तविक धर्म का हमने स्पर्श ही नहीं किया। धर्म और हमारे बीच में संसार की आधि, व्याधि, उपाधि रूपी जाले चारों और फैले हुए हैं। आज परिग्रह के लिए भगवान् और धर्म को छोड़ते हुए भी हमें समय नहीं लगता। जिसने भगवान् की रात-दिन सेवा की है और मंदिर की प्रतिष्ठा कैसे बढ़े इसकी चिंता निरन्तर करते रहते हैं वे ही लोग आज नई हवा चलने पर अपनी जन्मभूमि को कुछ ही क्षणों में छोड़ देते हैं, क्योंकि दूसरे स्थान पर अर्थोत्पादन अधिक होता है। धन के लिए प्रभु को भी छोड़कर चले जाते हैं। आज गांवों की दशा देखो, अधिकतर गांवो में भगवान् को पुजारी के अधीन कर दिया है और बहुत से गांवों में मंदिरों की सार-संभाल करने वाला कोई नहीं है। ऐसा अपनी अनुकूलता के अनुसार हो तो धर्म कैसे सुख दे सकता है?

श्रावक की व्याख्या - (1) संस्कृत में 'श्रु' नाम की धातु है इसको 'ण्वक्' प्रत्यय लगाने से उसकी वृद्धि श्रु+ण्वक्= श्रु+अक्=श्रौ+अक्=श्रावक, शृणोति इति श्रावकः, जो सर्वदा जिनवाणी का ही श्रवण करता हो वह श्रावक कहलाता है। (2) जिसमें श्रद्धा, विनय और क्रिया ये तीनों वस्तुएँ जब एकत्रित होती है तब वह श्रावक कहलाता है।

श्रेष्ठ दवा

श्रावण वदि ११

किसकी उपासना . . . .

संसार का स्वरूप ही ऐसा है जिसमें जीव एक के बाद एक दु:खों की पीडा का अनुभव करते रहते हैं। अनन्त काल से चल रही दु:ख की हारमाला में मनुष्य फँसकर रखड़ता रहता है। जब तक संसार की असारता का स्वरूप उसके ध्यान में नहीं आएगा तब तक यह जीव प्रत्येक जन्म में अधिक से अधिक यातनाएं भोगता जाएगा। प्रमाद अर्थात् बैठे रहना प्रमाद नहीं है, किन्तु सारे दिन विषय-वासनाओं की विचारणा करते रहना एक तरह का प्रमाद है। **ज्ञानियों ने जीवन में पंच परमेष्ठि की उपासना के लिए कहा है, किन्तु हम किसकी उपासना कर रहे है, जानते हो? पांचों इन्द्रियों के सुख की उपासना करते हैं।** समाज का आधा भाग यानि नारियाँ परिवार के खाने की व्यवस्था में ही लगी रहती हैं! सुबह क्या खाना और क्या बनाना, दोपहर को, संध्या को और महीने भर क्या खाना है, अरे, वर्ष में हमें क्या खाना है इसकी भी तैयारी करती रहती है। छूंदा, मुरब्बा, पापड़, बड़ी आदि.... यह जीव को भोजन की अनन्त वस्तुएं खाने पर भी कभी उसे तृप्ति नहीं हुई। **गति चारे कीधां आहार अनन्त नि:शंक, तोय तृप्ति न पाम्यो जीव लालचियो रंक....** अनन्त जन्मों के आहार के समूह को यदि इकठ्ठा किया जाए तो मेरु पर्वत के समान हो जाय तब भी जीव को तृप्ति कहाँ है?

तप ही दवा है . . . .

तप जैसी रोग की कोई दवा नहीं है। जगत् में प्रत्येक स्थान पर किसी भी प्रकार के काम करने वाले कारीगर को छुट्टी मिलती है। मनुष्य को आराम तो मिलना चाहिए न! अब तो सरकार ने सप्ताह में दो दिन की

छुट्टी स्वीकार की है। हमारा शरीर भी एक मशीन रूपी कारीगर है, इसको भी एक दिन की छुट्टी तो मिलनी ही चाहिए। सप्ताह में दो नहीं तो एक उपवास तो करना ही चाहिए। फिर देखो तुम्हारे शरीर में क्या कोई रोग आता है? भगवान् महावीर का बताया हुआ तप जीवन में कितना अधिक उपयोगी है। इस तप से कर्मों का क्षय तो होता ही है, साथ ही यह तप आरोग्य के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है। अट्ठम अर्थात् तीन उपवास, आठ क्यों नहीं? अट्ठम का अर्थ तो आठ होता है।

अट्ठम किसे कहते हैं? . . . .

शास्त्रकार कहते हैं- **एक बार खाने वाला योगी, दो बार खाने वाला भोगी और तीन बार खाने वाला रोगी।** अट्ठम अर्थात् आठ भोजन का त्याग। सामान्यतः प्रतिदिन के दो भोजन का त्याग याने तीन दिन के छः भोजन का त्याग। प्रारम्भ के दिन में एकासणा और पारणे के दिन एकासणा। इस प्रकार आठ भोजन का त्याग होने से ज्ञानी पुरुषों ने इसका नाम अट्ठम रखा है।

अट्ठम का शुल्क . . . .

अमेरिका में एक डॉक्टर था। उसकी भारत के निवासियों पर बहुत श्रद्धा थी। उसको ऐसा लगता था कि हिन्दुस्तान के ऋषि-मुनियों ने तप को बहुत बड़ा महत्त्व दिया है, वह किस लिए? पश्चिम देश के वैज्ञानिकों ने भोग की सामग्री अवश्य एकत्रित की, जबकि हमारे ज्ञानियों ने त्याग की सामग्री खड़ी की। वह डॉक्टर प्रतिदिन तप के ऊपर चिंतन करता है। चिंतन करते हुए उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि इन समस्त रोगों की जड़ भोजन ही है। भारत के ज्ञानीजनों ने जो तप बतलाया है वह वास्तव में उत्कृष्ट है। रोगों का मूल भोजन और दवा दोनों ही है। उस डॉक्टर ने ऐसा प्रचार किया- दवा छोड़ो और उपवास करो। उसके इस प्रचार से लोगों को ऐसा लगने लगा यह डॉक्टर तो उपवास करवाकर लोगो को मार देगा। इस गलतफहमी के विचारों से लोगों में जोश पूर्वक हलचल मची

और लोगों ने उसका बहिष्कार किया। वहाँ की सरकार ने उस डॉक्टर को जेल में बंद कर दिया। उसने कैदखाने में रहते हुए भी उपवास की प्रवृत्ति चालू रखी। अंत में सरकार ने थककर उसको जेल से मुक्त कर दिया। उस डॉक्टर ने मुक्त होकर उपवास की अस्पताल बनवाई। उस औषधालय में जो कोई भी रोगी आता उसको प्रवेश शुल्क के रूप में अट्ठम करना पड़ता। अट्ठम के पश्चात् उस व्यक्ति को जिस प्रकार का रोग होता उसी अनुपात में वह उपवास करवाता था। डॉक्टर स्वयं चौरासी वर्ष की अवस्था में भी चुस्त और सशक्त था। तप के तो फायदे ही फायदे हैं।

लोभ और लाभ के बीच में केवल एक ही मात्रा का अंतर है। इसीलिए लोभ हमेशा आगे रहता है। ज्यों-ज्यों लाभ होता है त्यों-त्यों लोभ बढ़ता जाता है।

जोड़ और तोड़

श्रावण वदि १२

नमस्कार . . . .

महापुरुषों के साथ हमें सम्बन्ध जोड़ना है तो किस प्रकार जोड़ना चाहिए? क्योंकि महापुरुष तो महान् होते हैं जबकि हम एक मामूली प्राणी हैं। **नमस्कार यह एक ऐसी वस्तु है कि उसके माध्यम से हम महान् से महान् पुरुषों के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ सकते हैं तथा महान् विभूतियों के साथ सम्बन्ध जोड़ने से उनमें रहे हुए अनन्त गुणों का संचार हमारे में होता है। जिस प्रकार विद्युत् गृह होता है और उसके साथ एक वायर का सम्पर्क कराने पर दुनिया के प्रत्येक देश में विद्युत् जा सकती है।** परन्तु यदि वायर अर्थात् तार में किसी प्रकार की कमी हो अथवा अच्छी तरह से न जोड़ा गया हो तो हमको प्रकाश कैसे मिल सकता है? **उसी प्रकार प्रभु के साथ सम्बन्ध स्थापित करना हो तो नमस्कार रूपी तार से ही जोड़ सकते हैं।** किन्तु, इस तार में किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं होनी चाहिए। कोई महिला पानी भरने के लिए कुएं पर जाती है। घड़े को पानी में उतारती है। प्रारम्भ में घड़ा पानी पर तैरता है। जब महिला उसको दो-चार बार झुकाती है तो तत्काल ही वह घड़ा पानी से भर जाता है। **उसी प्रकार जो मानव हृदय को सच्चे भावों से झुकाता है, नमन करता है उसका परम कल्याण हो जाता है।** मस्तक से नमस्कार तो बहुत लोग करते हैं परन्तु यदि परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ना है तो हृदय से नमन करो। परमात्मा का जुड़ना हृदय के साथ ही होता है। इस योनि में ही परमात्मा हमारे बहुत नजदीक हैं। दूसरी

योनियों में तो इनके दर्शन भी दुर्लभ हो जाते हैं।

हृदय से प्रणाम ....

कृष्ण महाराज सभा में बैठे हैं। वे अपने दोनों राजकुमारों को कहते हैं- भगवान् नेमिनाथ को जो पहले नमस्कार करेगा उसको मैं उपहार स्वरूप घोड़ा दूँगा। दोनों राजकुमारों के नाम थे- शाम्ब और पालक। दोनों को घोड़ों की आवश्यकता थी। पालक विचार करता है- मैं भगवान् को पहले नमस्कार करके घोड़ा प्राप्त कर लूँ, इसलिए वह तत्काल ही उठकर दौड़कर भगवान् के पास जाता है और केवल भगवान् को बैठा हुआ देखकर मस्तक झुकाकर वापस लौट आता है। जबकि शाम्ब ने तो स्वयं के नियमानुसार उठकर आसन पर बैठकर भगवान् को हृदय से नमस्कार किया। पालक वापस आकर कृष्ण महाराज को कहता है- पिताजी! मैं पहले वन्दन करके आया हूँ, अतः घोड़ा मुझे दीजिए। कृष्ण कहते हैं- पहले मैं भगवान् से पूछ लूं कि पहले नमस्कार किसने किया है? कृष्ण महाराज भगवान् से पूछते हैं। भगवान् कहते है- पहले शाम्ब ने वन्दन किया है। पालक कहता है- शाम्ब तो अभी तक आपके पास आया ही नहीं तो उसने नमस्कार कैसे किया? भगवान् उत्तर देते हैं- उसने घर बैठे ही हृदय से मुझे नमस्कार किया है इसलिए पहला नमस्कार उसी का है। अतः परमात्मा के साथ हृदय से सम्बन्ध जोड़ो, प्रभु के साथ सम्बन्ध जुड़ जाने से धन्ना, शालिभद्र, रोहिणेय जैसे अनेक महात्मागण तिर गये हैं। भगवान् में एक ऐसी विशेषता होती है, वे द्रष्टा होते हैं, चिंतक नहीं होते; क्योंकि चिंतन में सारी वस्तुओं का समावेश हो जाता है और कभी-कभी झूठी वस्तु का भी चिन्तन होता है। जबकि आँखो देखी सत्य ही होती है। भगवान् ऐसे ही द्रष्टा थे।

शुश्रूषा ....

भोजन करते हुए भूख का महत्त्व है। जिस मनुष्य को तेज भूख लगी होगी उसको सुखी रोटी भी शक्कर के समान मीठी लगेगी। भूख

नहीं होने पर अमृत जैसा भोजन भी स्वादरहित बन जाता है। हमें धर्म की जिज्ञासा रूप भूख जगानी चाहिए। आज धर्मगुरुओं के वाणी रूपी अमृत भोजन हमारे सामने रखा हुआ है, परन्तु हमें धर्म को समझने की भूख नहीं है इसलिए धर्म सुनते हुए भी वह हमें रुचिकर नहीं लगता है। संस्कृत में '**धृ**' नाम की धातु आती है '**धृ**' अर्थात् धारण करना। धर्म शब्द 'धृ' के ऊपर से बना है। **दुर्गति में पड़ते हुए जीवों को जो बीच में ही धारण कर लेता है वह धर्म है।** वास्तव में मनुष्य के हृदय में इस प्रकार का विचार आता है कि धर्म को मैं बहुत समय से सुनता आ रहा हूँ, किन्तु उसका प्रभाव मेरे ऊपर नहीं होता। मैं कैसा मंदभागी हूँ, अन्यथा मेरा कल्याण हो जाता। इसके विपरीत हम विचार करते है कि हमने धर्म खूब सुना है, अब सुनने को कुछ शेष नहीं रहा।

नमस्कार में बाधक ....

चीन में एक तत्त्वज्ञानी थे। तत्त्वज्ञान का चिंतन करने के लिए अनेक मनुष्य उनके पास आते थे। अहंकार में डूबा हुआ एक व्यक्ति ढीठ बनकर तत्त्वज्ञान सुनने के लिए उनके पास आया। उस चीनी ने कहा- मुझे तुम्हारा तत्त्वज्ञान सुनना/समझना है, मुझे सुनाओ। उत्तर में उस चीनी तत्त्वज्ञ ने यह कहा- भाई, पहले चाय पीकर आओ फिर हम बैठेंगे। फलतः चाय की केटली आई, चीनी भाई ने केटली में से चाय कप में डालनी चालु की, कप भर गया, तश्तरी भी भर गई, तब भी उसने चाय की धार बंद नहीं की। उस अहंकारी चीनी भाई ने कहा- यह क्या कर रहे हो? कप और तश्तरी तो भर गई है, चाय बाहर गिरती जा रही है। तत्कालीन चीनी तत्त्वज्ञ ने कहा- मैं तुम्हें तत्त्वज्ञान सीखा रहा हूँ। क्योंकि तुम्हारे दिमाग में ठूस-ठूस कर अहंकार भरा हुआ है। मैं तुम्हें कुछ भी कहूँगा वह चाय के समान व्यर्थ ही होगा। अतः पहले तुम अहंकार को दूर करो और उसके बाद तत्त्वज्ञान को प्राप्त करो।

कैसा भोजन करते हैं ....

वस्तुपाल और तेजपाल वीरधवल राजा के मन्त्री थे। मन्त्री होने के कारण उनका सम्पूर्ण दिन मत्रंणा में ही बीत जाता था। तनिक भी अवकाश नहीं मिलता था। उनके गुरु महाराज विचार करते हैं कि वस्तुपाल और तेजपाल डूब जाएंगे, क्योंकि धर्म क्रिया करने का उन्हें अवसर नहीं मिलता और सत्संग भी छूट गया है। उन दोनों पर अत्यन्त कृपा होने से गुरु महाराज विहार कर धोलका आए। वैसे तो गुरु महाराज आते थे तब गुरु महाराज के पास जाते ही थे। भक्ति करते थे और उनके सान्निध्य में अपना समय भी बिताते थे। इस बार वस्तुपाल उपाश्रय में आये नहीं इसलिये गुरु महाराज उनके घर जाते हैं। घर में वस्तुपाल नहीं मिलते हैं केवल रसोईया ही था। उसने गुरु महाराज का सम्मान किया। गुरु महाराज ने कहा- हे भोजन बनाने वाले! आज तुम भोजन मत बनाना। घर में जो कुछ रूखा-सूखा हो वह भोजन करने के लिए मन्त्री को देना। रसोईये ने भोजन नहीं बनाया। वस्तुपाल घर आये, भोजन करने बैठे। उस समय रसोईया थाली में खाखरा आदि परोसने लगा। यह देखकर वस्तुपाल गुस्से में आ गये और पूछा- यह क्या है? रसोईये ने गुरु महाराज का जो आदेश था वह कह सुनाया। वस्तुपाल एकदम चौक गये। तुरन्त ही उसी घड़ी उपाश्रय की ओर दौड़े, गुरु महाराज के पैरों में पड़े और कहा- आप कब पधारे, मुझे तो सूचना भी नहीं मिली? गुरु महाराज कहते हैं- भाई, अब तुम बड़े आदमी हो गये हो, ठीक कह रहा हूँ न? मैं तुम्हारे रसोईये को बासी खाना परोसने के लिए कहकर आया था। उसके पीछे कारण था उसे सुनो! तुम्हें ताजा भोजन करना है या बासी ही खाना है? क्योंकि यह तू जो कुछ भोग रहा है यह तेरे बाप-दादा का पुण्य है। पुण्य समाप्त होने पर क्या होगा? मैं तुझे केवल यही सन्देश देने आया हूँ। वस्तुपाल ने

उसी क्षण यह नियम किया कि गुरुमहाराज के दर्शन और उनका उपदेश सुनने के बाद ही राजसभा में जाना। वस्तुपाल ने क्या नहीं जाना या समझा? फिर भी वे प्रतिदिन गुरु की वाणी सुनने के लिए जाते थे। हम प्रतिदिन क्या दवाई नहीं लेते हैं? जब तक वह दवा गुणकारी नहीं बन जाती है तब तक उसे लेते रहते हैं। उसी प्रकार यह धर्मवाणी जब तक हमको धर्मी न बना दे तब तक एक प्रकार की बातें होने पर भी हमें गुरुवाणी का श्रवण करना ही चाहिए।

श्रवण परिवर्तन करता है .

श्रावण वदि १३

जाना जरूर है . . . .

जीवात्मा को यह विचार करना है कि यह संसार एक विशाल समुद्र है। इस समुद्र में अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं और मृत्यु को प्राप्त करते हैं। पानी की एक बूंद में भी असंख्यात जीव जन्म लेते हैं और मरते हैं। देवों को भी दुर्लभ ऐसा यह मनुष्य जन्म प्राप्त करके भी हम इसकी दुर्लभता को समझ नहीं पाये हैं। हमनें जहाँ जन्म लिया है वहाँ मृत्यु भी अनिवार्य है। यह कलेवर (शरीर) अपने स्वामित्व का नहीं है, किराये का है। मालिक जब भी आदेश देगा हमें इसे छोड़कर जाना ही पड़ेगा। फिर क्यों न दीवाली हो या पर्युषण पर्व हो। उसका आदेश होने के बाद एक सैकण्ड अथवा क्षण मात्र भी उसमें रह नहीं सकते। खाली करने में/ छोड़ देने में ही भलाई है। इस चिंतन की भूमिका से श्रवण करें तभी वह हृदय में उतरता है। इसीलिए शास्त्रकारों ने तीन भूमिका बतलाई है-

१. श्रवण, २. मनन-चिन्तन, ३. निदिध्यासन (तन्मयता) श्रवण करने के पश्चात् उसका मनन-चिन्तन करो और फिर उसमें तन्मय बनो।

केवल श्रवण पानी होता है . . . .

इस समय हमारा सारा समाज श्रवणप्रेमी है। चिन्तन का नामो-निशान भी नहीं है। चाहे जैसी बहुमूल्य से बहुमूल्य साड़ी हो किन्तु वह है तो वस्त्र/चीथड़ा ही है न? यह समस्त आभूषण पृथ्वीकाय के कलेवर हैं या अन्य कोई? हम जिन पदार्थों पर चिपके हुए हैं, उन पदार्थों से जब हमारा आकर्षण कम हो जाएगा तब उसका मूल्य भी कम हो जाएगा। **यह सारा संसार मूल्यहीन पदार्थों से भरा हुआ है।**

चिन्तन . . . .

इंग्लैण्ड में एलिजाबेथ नाम की रानी हुई। वह वस्त्रों की बहुत शौकीन थी। बाजार में किसी भी किस्म का नया वस्त्र आ जाए, तो वह उसके घर पहुँचे बिना नहीं रहता था। उसके पास लगभग ३ हजार वस्त्रों की जोड़ियां थीं। इतना होने पर भी वह अतृप्त व असंतुष्ट रहती थी। सोचिये, एकेक वेश को बारी-बारी से पहनने का अवसर कब आएगा? और जब अवसर आएगा वह वस्तु पुरानी बन गई होगी अथवा उसकी फैशन समाप्त हो गई होगी। बस, यह सारा वेशों का संग्रह निरर्थक और अहंकार के पोषण के लिए ही है। आज मनुष्य को सुनने का इतना अधिक रंग लगा है कि कोई प्रसिद्ध वक्ता आता है तो उसे सुनने के लिए दो-तीन हजार की मेदिनी एकत्रित हो जाती है, किन्तु उस श्रवण पर कोई चिन्तन नहीं करता है। **चिन्तन रहित ज्ञान केवल पानी होता है।** पानी की शक्ति कहाँ तक? पानी पीते हैं तो कुछ समय के लिए प्यास बुझ जाती है किन्तु पुनः प्यास लगती है, उसी प्रकार जब तक श्रवण करते हैं तभी तक वह श्रवण रहता है। व्याख्यान कक्ष के बाहर जाते ही व्याख्यान का प्रभाव समाप्त हो जाता है, किन्तु श्रवण के बाद मनन होना चाहिए।

चिन्तन दूध है . . . .

मनन और चिन्तनज्ञान दूध जैसा है। केवल दूध पीने वाला व्यक्ति महीनों के महीने बीता सकता है, अतः दूध जैसा ज्ञान प्राप्त करना सीखो। दूध जैसा ज्ञान प्राप्त होने पर जीवन में तृप्ति का अनुभव होगा। यदि चिन्तनज्ञान हो तो जो आनन्द अर्थोपार्जन में होता है उससे कई गुणा अधिक आनन्द दान देने में होगा।

निदिध्यासन (तन्मयता) अमृत है . . . .

धर्म प्राप्त करने के बाद उसमें तन्मय बन जाना। **तन्मयता से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह अमृत समान होता है।** अमृत का स्वाद कुछ क्षण आस्वादन के लिए भी किया हो तो वह स्वाद वर्षों तक स्मरण में रहता

है और उससे समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं तथा परम तृप्ति मिलती है। उक्त तीनों स्तर अर्थात् भूमिका हमें प्राप्त हो जाए तो वास्तव में यह जीव सरलता से इस भयंकर संसार समुद्र को पार कर सकता है। अत: पहले प्रभुवाणी का श्रवण करो, फिर उसका चिन्तन करो और उसके बाद उसमें तन्मय बन जाओ।

आवी रूड़ी भगति में पहेलां न जाणी
पेलां न जाणी रे में तो पहेलां न जाणी
संसारनी मायामां में तो वलोव्युं पाणी

अर्थात् ऐसी रुचिकर भक्ति मैने पहले नहीं जानी थी, पहले न जानी थी, मैने पहले नहीं जानी थी। संसार की माया में लिप्त होकर आज तक पानी का बिलौना किया है।

भवजलहम्मि असारे दुल्लहं माणुस्सं भवं।

अर्थात् इस असार भव समुद्र में मनुष्य भव दुर्लभ है।

दुनियाँ में दो अरब की आबादी होगी, उस आबादी में आत्मतत्त्व और परमात्म तत्त्व का विचार करने वाले कितने मनुष्य होंगे? आज हमने विचार को ही ताला लगा दिया है।

पागलों के बीच समझदार ....

एक पागलों का अस्पताल था। उसमें जिसका दिमाग फिर गया हो वैसे ही व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाता था। कुछ समय तक उसमें रखते थे। समय पूर्ण होने से पहले कोई पागल व्यक्ति समझदारी की बात भी करता तो वहाँ से उसे छोड़ते नहीं थे। एक पागल मनुष्य एक दिन पागलपन की अवस्था में फिनाईल की पूरी बोतल पी गया। जिस कारण उसके पेट में रहे हुए विषैले जन्तु भी अधोमार्ग से निकल गये। वह स्वस्थ हो गया। उसने चौकीदार से कहा- भाई, अब तो मुझे छुट्टी दो, मै स्वस्थ और समझदार हो गया हूँ। चौकीदार ने कहा- अरे, क्यों ऐसी मूर्खता भरी बातें कर रहा है। पागल, पागल ही रहता है। जब तक तेरी अवधि पूर्ण

न हो जाए मैं तुझे मुक्त नहीं कर सकता। विचार करिए, स्वस्थ होने पर छः महीने तक वह पागलों के बीच में कैसे रह सकता है? उसी प्रकार जब मनुष्य को संसार की असारता समझ में आ जाए तो उसे पागलों के समुदाय में रहना कैसे अच्छा लग सकता है? कभी यह भी विचार किया है कि मैं कितना भाग्यशाली हूँ! मनुष्य जब जन्म लेता है उस समय उसके साथ असंख्यात जीव जन्म लेने योग्य होते हैं, उन असंख्यात जीवों में मेरा नम्बर लगा और जन्म हुआ। माता और पिता की कृपा से कुशलक्षेम पूर्वक हम बड़े हुए, हमें जिनशासन मिला, उत्तम संस्कार मिले और उत्तम कुल मिला। अहा! हम वास्तव में कितने भाग्यशाली हैं।

अमूल्य वाणी ....

उपदेश सुनने में एक कौड़ी भी लगती नहीं और बिना खर्च किए ही मुफ्त में सुनने को मिलता है, इसी कारण इसकी कीमत भी घट गई है। गाँव के चौरे पर बातें करेंगे और गप्पे मारेगें किन्तु धर्म सुनने के लिए नहीं आएंगे। इसी समय सिनेमा या किसी नेता का भाषण होता तो हम दौड़कर जाते। वहाँ पैसे भी खर्च करते और वाहवाही भी लेते। जबकि आज गुरुवाणी मुफ्त में मिल रही है। उपाश्रय में बैठक मुफ्त में मिल रही है। धर्म मुफ्त में मिल रहा है। साधु-साध्वी भी मुफ्त में मिले हैं। सब कुछ मुफ्त में मिला हुआ है। शायद इसी कारण गुरुवाणी को श्रवण करने की इच्छा नहीं होती है?

भगवान में एक ऐसी विशेषता, ऐसा गुण होता है कि वे द्रष्टा होते हैं, चिंतक नहीं होते; क्योंकि चिंतन में सारी वस्तुओं का समावेश हो जाता है और कभी-कभी खोटी वस्तु का भी चिंतन हो जाता है जबकि आँखों देखी ही सत्य होती है। भगवान ऐसे ही द्रष्टा थे।

कितना मूल्य

श्रावण वदि १४

जीवन मूल्यवान है ....

मनुष्य जन्म के द्वारा विश्व की मूल्यवान से मूल्यवान वस्तु भी प्राप्त हो जाती है, इसीलिए महापुरुषों ने मनुष्य जन्म की दुर्लभता का प्रतिपादन किया है। मनुष्य जन्म का महत्व यह नहीं है कि खाने को अच्छा मिला और पहनने को अच्छा मिला, अपितु धर्म रूपी रत्न प्राप्त करना ही अत्यन्त दुर्लभ है। अष्टापद पर्वत के ऊपर जब गौतम स्वामी पधारे उस समय भगवान् ने गौतम गणधर को कहा था- हे गौतम, मानव को मनुष्य जन्म मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। यह संसार दुर्घटनाओं से भरा हुआ है, कब किसके साथ दुर्घटना घट जाए कह नहीं सकते। इसीलिए किसी भी समय क्षण मात्र प्रमाद मत कर! इस भागदौड़ के अन्त में हाथ में जो कुछ आता है वह अनन्त दुःख को देने वाला बनता है।

दुर्लभ की प्राप्ति ....

अकबर बादशाह और बीरबल दोनों बैठे हुए हैं। उनके सामने से एक बहुत बड़ा जुलूस निकलता है। जुलूस में सम्मिलित व्यक्ति जोर-जोर से चिल्ला-चिल्लाकर यह कहते हैं- हे अन्नदाता, हम भूखे मर रहे हैं। कुछ दो, कुछ दो। उनकी आवाजें सुनकर अकबर बीरबल को कहता है- ये कौन लोग हैं जो चिल्ला रहे हैं। मुझे इनका चिल्लाना अच्छा नहीं लगता है। किसलिए भूखे मरते हैं? यदि पूरा खाजा खाने को नहीं मिलता है तो खाजे का चूरा ही खा लें। बीरबल कहता है- सम्राट इन लोगों ने दुनिया में खाजे का नाम भी नहीं सुना है। जहाँ सूखी रोटी का टुकड़ा भी मिलना कठिन होता है वहाँ खाजे की बात कैसी? सुखी को सुख की कल्पना में किसी भी दिन गरीब के प्रति विचार नहीं आता। हमें यह मनुष्य भव

मिला है, इसलिए जीव की यातना और पीड़ा का हमें ध्यान ही नहीं आता। जिस प्रकार अकबर को खाजा सामान्य पदार्थ लगता है उसी प्रकार हमें यह उत्तम कुल, आर्यदेश और जैन धर्म आदि सामान्य प्रतीत होता है। उन गरीबों के समूह को खाने के लिए खाजा मिलना कितना दुर्लभ है? उसी प्रकार हमारी आँखें बंद हो जाने पर लाख प्रयत्न करने पर भी यह मनुष्य जन्म हमें पुनः मिलने वाला नहीं है।

श्रवण रुचि . . . .

एक व्यक्ति ने कहा– जगत् में दो प्रकार के मनुष्य हैं। कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जो चोरी करते हैं और जेल में जाते हैं, तथा कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जो जेल में जाते हैं और चोरी करते हैं। यह राजकीय संस्थाओं में चलता है। जेल में गये हुए नेतागण कहते हैं– हम पहले जेल में गए थे, अतः राज्य करने का अधिकार हमारा है और राज्य पर आसीन होते हैं, चोरी करने लगते हैं। ऐसे ही सब लोगों के भाषण सुनने का हम लोगों को खूब मन होता है जो विनाश की ओर ले जाता है। जबकि मनुष्य को आज धर्म की कल्याणकारी देशना सुनने का मन नहीं होता। जबकि सुनाने वाला स्वयं तुम्हारे सामने आता है। तुम उसको अपने जीवन में उतारो या नहीं उतारो वह तो सुनाता ही है। भगवान् की कितनी अपार करुणा है, कि जिसने चतुर्विध संघ की स्थापना की। इस संघ में शामिल होने के लिए किसी प्रकार का शुल्क नहीं है। भूख और प्यास को सहन कर तथा पैदल चलकर साधु साध्वियों का संघ गांव-गांव घूमता है और परमात्मा का संदेश पहुँचाता है। परन्तु उस संदेश को ग्रहण करने वाले बहुत कम लोग हैं। देवों अथवा इन्द्रों को ऐसी प्रभुवीर की वाणी सुननी हो तो लाखों योजन का अन्तर काटकर आना पड़ता है और तभी सुन पाते हैं। जबकि यह साधु-साध्वी का संघ चलकर स्वयं तुम्हारे सामने आया है। श्रवण की रुचि उत्पन्न होना भी अति दुर्लभ है। आज इस भारत देश से जैन धर्म के विद्वानों को अमेरिका बुलाया जाता है। उनको नहीं मिला है इसीलिए

जानने की छटपटाहट है। अमेरिका में १ हजार डॉलर देने पर संवत्सरी प्रतिक्रमण होता है। अमेरिका के लोग प्रतिक्रमण विधि समझने के लिए भारत में आते हैं। विचार करो जिनको नहीं मिला है उनके लिए यह कितने महत्व का है।

सूचक-स्वप्न ....

ढाई हजार वर्ष पहले की बात है। एक व्यक्ति को स्वप्न आया। स्वप्न में देखता है कि जनता पानी के लिए प्यास से तड़फड़ा रही है। उनके पीछे कुंआ दौड़ता है। कुंआ आवाज दे-देकर कहता है- पानी पीओ, पानी पीओ। किन्तु लोग तो पीछे देखने की अपेक्षा आगे की ओर चिल्लाते हुए, दौड़ते हुए चले जाते हैं। स्वप्न पूरा होता है। वह व्यक्ति किसी महात्मा के पास जाकर उस स्वप्न का रहस्य पूछता है। महात्मा कहते हैं- भाई! भविष्य में भयंकर दुष्काल पड़ने वाला है। साधु, साध्वी और सन्त महात्मागण आवाज दे-देकर इनके पीछे घूमेंगे किन्तु ये लोग आगे ही दौड़ेंगे। गुरु भगवान् स्वयं की वाणी रूपी पानी पिलाने के लिए पीछे दौड़ेंगे किन्तु लोग उस पानी को नहीं पीएंगे। मूल्यवान आभूषण कौन-कौन पहन सकता है? जो सेठ होगा वही न! गरीब मनुष्य क्या पहन सकता है? उसी प्रकार जिसके पास सद्गुण रूपी आभूषण होंगे वही धर्म को समझ सकेगा। सद्गुणों के साथ धर्म देदीप्यमान हो उठेगा।

प्रदर्शन नहीं किन्तु दर्शन ....

हमारा यह जीवन परमात्मा का दर्शन करने के लिए है। आज सब जगह प्रदर्शन हो रहा है। ऐश्वर्य का हो या वस्त्रों का, आभूषणों का हो या रूप सौन्दर्य का, बस केवल प्रदर्शन मात्र प्रदर्शन। विश्व के समस्त जीव स्वार्थों से भरे हुए हैं। जबकि परमात्मा ही एक ऐसा है जो परमार्थ से व्याप्त है। सूरदास अंधे थे। कुछ लोग कहते हैं कि वे जन्मान्ध थे, जबकि कुछ लोग कहते हैं कि इस जगत् की सूरत को देखकर मुझे क्या करना है? बस जगत् का चेहरा नहीं देखना पड़े इसीलिए वे आँखों के सामने पट्टी बांध लेते थे। केवल परमात्मा का मुख ही देखने लायक है।

देवगण असंख्याता कैसे? ....

देवलोक में असंख्याता देव उत्पन्न होते हैं जबकि मनुष्यलोक में संख्याता मनुष्य ही। देवलोक में इतने देव कहाँ से उत्पन्न होते हैं?

समुद्र में प्रतिमा के आकार की बेलड़ियाँ होती हैं। मच्छ उन बेलड़ियों को देखते हैं और उन्हें ऐसा लगता है कि इस प्रकार की आकृति हमनें पहले कहीं देखी है। अन्त में उनको जातिस्मरण ज्ञान होता है और वे विचार करते हैं कि पूर्व जन्म में कुकर्म करके हम इस योनि में भटक रहे हैं। इस वैचारिक आघात के कारण वे अनशन करते हैं और वहाँ से मरण प्राप्त करके वे देवलोक में देवरूप में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार मनुष्य संख्याता ही रहते हैं और देव असंख्याता उत्पन्न होते हैं।

मूर्ति में साक्षात् दर्शन ....

बर्मा के उत्तर में बैंगकांग नाम का शहर है। वहाँ बुद्ध की प्रतिमा है। वह पाँच टन सोने की बनी हुई है। ५६ मण का एक टन होता है। सच्चे दिल से मूर्ति की उपासना के द्वारा भी बहुत से लोग तिर जाते हैं। मनुष्य मूर्ति में साक्षात् परमात्मा के दर्शन कर सकता है। परन्तु जब उसका आत्मोल्लास उच्च कोटि का बनता है, तभी वह परमात्मा का दर्शन कर सकता है।

> जो व्यक्ति शरीर, आयुष्य, सम्बंधों और सम्पत्ति आदि की अनित्यता का सदैव चिन्तन करता है, उनके चले जाने पर भी उसको तनिक भी शोक-ग्लानि नहीं होती।

धर्म की योग्यता

श्रावण वदि अमावस्या

संसार में सब दुःखी हैं . . . .

सभी लोग मनुष्य के सुख में भागीदार बनने के लिए आते हैं, क्या ये लोग दुःख में भी भागीदार बनने के लिए आते हैं? अरे! दुःख आने पर सगा भाई भी दूर हो जाता है। संसार का ऐसा स्वरूप आँखों से देखते हुए भी मनुष्य इसी में आसक्त रहता है, क्योंकि वाणी श्रवण करने के पश्चात् भी वह चिन्तन नहीं करता है। जब मनुष्य को इस संसार से विरक्ति हो जाएगी तभी संसार की यह घटमाला पूर्ण होगी। श्रीहेमचन्द्राचार्य कहते हैं- तू दूसरों की अवस्था देखकर दुःखी होता है। अहा! बेचारे कितने पीड़ित हैं? इस प्रकार बोलता है, परन्तु यह विचार नहीं आता कि जिस प्रकार की इनकी दुर्दशा है, वैसी मेरी भी होने वाली है।

गुणी ही धर्म के योग्य है . . . .

जो मनुष्य गुणों से दरिद्र होता है **अर्थात् गुणरहित होता है वह धर्म के योग्य नहीं होता। वह सामान्य धर्म करता भी है किन्तु विशिष्ट कोटि का धर्म उसके हस्तगत नहीं होता। गुणों के साथ ही धर्म गुंथा हुआ है।** आज अर्थसम्पन्न मनुष्य ऐसा मानता है कि उसे धर्म करने की क्या आवश्यकता है? जो गरीब, अनाथ, साधनरहित होते हैं उन्हीं के लिए धर्म है। ठीक है न। सामान्यतया अर्थसम्पन्न मनुष्य को जब धर्म श्रवण की इच्छा नहीं होती तो देवलोक में सुख भोगते हुए देवों को कहाँ से हो सकेगी? यदि कदाचित् कोई पूर्व का आराधक देव हो और उसे श्रवण करने की इच्छा हो तो उसे कितनी दूरी को लांघकर आना पड़ता है। इसलिए महापुरुष कहते हैं कि, जो धर्म सामग्री मनुष्य भव में प्राप्त हुई है वह सामग्री किसी अन्य लोक में मिलने वाली नहीं

है। पशु जीवन में तो धर्म की शक्यता ही नहीं है। मानव जीवन में भी दो-चार प्रतिशत को धर्म श्रवण की रुचि होती है। २१ गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही धर्म करने के योग्य होता है।

२१ गुण ....

१. **अक्षुद्र** - क्षूद्र न हो, अर्थात् बचकानापन न हो।

२. **रूपवान्** - पाँचों इन्द्रियों से परिपूर्ण हो।

३. **प्रकृति सौम्य** - स्वभाव से शान्त और नम्रप्रिय हो।

४. **लोकप्रिय** - जनता में प्रिय हो। धर्मी मनुष्य अधिकांशतः लोगों में प्रिय होता है।

५. **अक्रूर** - निष्ठुर न हो, दयालु हो।

६. **पापभीरु** - पाप से भय खाने वाला हो।

७. **अशठ** - कपट रहित हो, धूर्त न हो।

८. **दाक्षिण्य** - प्रतिष्ठायुक्त हो, आँखों की शर्म से भी आदमी सुधर सकता है।

९. **लज्जालु** - लज्जायुक्त हो। मैं यदि ऐसा-वैसा काम करूंगा तो मुझे लोग खराब की दृष्टि से देखेंगे। शास्त्रकारों ने लज्जा को गुणों की माता कहा है। शर्म वाला हो।

१०. **दयालु** - दया धर्म की माता है अर्थात् दया सम्पन्न हो।

११. **मध्यस्थ** - पक्षपाती न हो, साम्य दृष्टि वाला हो।

१२. **गुणानुरागी** - गुणों का अनुरागी हो, सब लोग दूसरों के दोष ही देखते हैं, गुण ग्रहण करने वाले विरले ही होते है।

१३. **सत्कथा** - सत्संग वाला हो, अच्छी मण्डली हो और जब देखें तभी धर्म कथा करने वाला हो।

१४. **सुपक्ष युक्त** - आस-पास रहने वाले सभी लोग सुसंस्कारी हों। क्योंकि जैसी संगति होती है वैसा ही प्रभाव पड़ता है।

१५. **विशेषज्ञ** - विशिष्ट रूप से धर्म का जानकार हो।

१६. **सुदीर्घदर्शी** - सर्वदा विचार कर कदम उठाने वाला हो।

१७. **वृद्धानुगत** - वृद्धों का अनुसरण करने वाला हो, वृद्धों की आज्ञा को स्वीकार करने वाला हो।

१८. **विनीत** - विनय युक्त हो। *'तस्मात् सर्वेषां गुणानां भाजनं विनयः।'* गुणरूपी रत्नों को धारण करने योग्य पात्र विनयी कहलाता है।

१९. **कृतज्ञ** - दूसरों के किए हुए उपकार को स्मरण करने वाला हो, उपकारी पर अपकार करने वाला न हो।

२०. **परहितचिन्तक** - स्वभाव से दूसरों का हित करने वाला हो।

२१. **लब्धलक्ष्य** - लक्ष्य बांधकर चलने वाला हो। जो मनुष्य किसी भी बात का लक्ष्य बांध लेता है वह पूर्ण कर ही लेता है।

जिसमें अहिंसा की साधना पराकाष्ठा तक पहुँची हो उस व्यक्ति के सामने जाते ही दूसरे मनुष्यों के समस्त वैर विकार नष्ट हो जाते हैं। वैर भावना भी दूर हो जाती है। अगर समागम मात्र से इन दूषणों से बच सकती है और उन व्रतों में तनिक सी भूल भी भवभ्रमण को बढ़ा देती है।

अक्षुद्रता

श्रावण सुदि १

पित्त के समान ....

वास्तव में इस जीवन में अर्जन करने योग्य कोई वस्तु हो तो वह धर्म ही है। धर्मरूपी जवाहरात प्राप्त करना महादुर्लभ है। आज जीवन में जो छिछोरापन है उसके कारण मनुष्य अपने में रहे हुए गुणों का अवमूल्यांकन करता है। जब मनुष्य के शरीर में पित्त की बढ़ोतरी हो जाती है और वह पित्त जब तक वमन के द्वारा बाहर नहीं निकलता है तब तक उसको चैन अर्थात् शांति नहीं मिलती है। जब तक जीवन में यह छिछोरापन समाया हुआ है, वह मनुष्य स्वकृत सत्कार्यों का गुणगान नहीं करेगा तब तक उसे शान्ति नहीं मिलेगी।

प्रथम अक्षुद्र गुण-वर्णन ....

विचारों में भी बचपना, स्वभाव से भी लड़कपन, धर्मकार्य में भी छिछोरापन, जिसमें ये अवगुण रहे हुए हो वह मनुष्य धर्म के लायक नहीं होता। उसके कथन एवं व्यवहार में भी छिछोरापन रहता है। सम्पूर्ण विश्व अधिकांशत: छिछला ही है। जीवन में गंभीरता लाओ। समुद्र गंभीर होता है। वह समस्त नदियों का पानी अपने में समा लेता है। जबकि थोड़े से पानी से भरे हुए घड़े छिछले होते हैं और वे छलकते रहते हैं वे पानी का संग्रह नहीं कर सकते। वस्तुत: आज अधिकाशंत: लोग छिछले हो गये हैं, इसीलिए कोई भी सत्कार्य करेंगे तो उनकी हार्दिक अभिलाषा रहेगी कि मैं उस कार्य की दूसरों से प्रशंसा प्राप्त करूं। जबकि गंभीर प्रकृति का मनुष्य किसी को दान देता है अथवा कोई उत्तम कार्य करता है तो उसका दूसरा हाथ भी नहीं जान पाता। एक पुत्र को उसके पिता ने कहा- हे वत्स, तुम धर्म कार्य में इच्छानुसार

खर्च करो किन्तु अपना नाम मत लगवाना। भगवान् के नाम के अतिरिक्त किसी का भी नाम न तो अमर रहा है और न रहेगा।

स्वामिवात्सल्य की प्रथा ....

एक युग में मनुष्य ऐसा सत्त्वशाली था, कि कोई भी कुछ भी लेने को प्रस्तुत नहीं होता था, किन्तु आज धैर्य और औदार्य दृष्टिगत नहीं होता। मनुष्य कहता है- हमें किस प्रकार से दान धर्म करना चाहिए। इसीलिए नवकारसी, स्वामिवात्सल्य आदि की प्रथा प्रारम्भ हुई। नवकारसी वांदने के लिए कैसा भी करोड़पति क्यों न हो वह आता है और उसी प्रमाण में धर्म कार्य में धन का व्यय करता है। आज तो यह सत्त्व इस युग में से निकल गया है। सबसे पहले श्रावक क्या विचार करता है, खाने का अथवा खिलाने का? भोग का अथवा त्याग का? शालिभद्र ने पूर्वभव में दरिद्री अवस्था में किसी भी दिन खीर नहीं देखी थी। फिर भी जब उसके हाथ में खीर का भाजन आया तो उसने क्या विचार किया? जानते हो न? गुरु महाराज को (अर्पण) वहोराकर बाद में खीर खाऊं। थाली पर बैठते हुए तुम्हारे हृदय में किसी भी दिन इस प्रकार का विचार आता है? क्योंकि हमारे हृदय में गुरुओं के प्रति वैसी सद्भावना नहीं है।

गंभीरता का फल ....

शालिभद्र को उस खीरदान का ऐसा विशेष फल क्यों मिला? क्योंकि उसने खीर अर्पण अवश्य की, किन्तु उसके विचारों में गंभीरता थी, इसीलिए उसने अपनी माता को भी नहीं कहा कि माँ मैंने खीर गुरु महाराज को वहोरा दी है। इस गंभीरता-गुण के कारण ही उसको इतना बड़ा फल प्राप्त हुआ।

सम्पत्ति का प्रदर्शन ....

एक सेठ थे। उसने अपने जीवन में अपार सम्पत्ति कमाई। तलघर के कमरों को उसने सोने चांदी से भर दिया। उसके हृदय में ऐसी उत्सुकता जाग्रत हुई कि मैं इसका भेद किसको बताऊं कि मेरे पास इतनी

अपार सम्पत्ति है? उसने विचार किया- राजा को यह जानकारी प्राप्त हो जाए कि मेरे पास ऐसी अखूट सम्पत्ति है तो बहुत अच्छा होगा। ऐसा विचार कर उसने अपने समस्त कुटुम्ब को इकट्ठा किया और उनके समक्ष कहा- यदि हम राजा को भोजन के लिए आमंत्रण दें तो कैसा रहेगा? छोटी बहू ने अस्वीकार किया। उसका कथन था कि सम्पत्ति का प्रदर्शन उपयुक्त नहीं है। फिर भी सेठ ने उसकी बात नहीं मानी और राजा को भोजन के लिए आमंत्रित किया। भोजनोपरान्त अपनी समग्र सम्पत्ति का प्रदर्शन किया। राजा तो सम्पत्ति से भरे हुए एक-एक कमरे को देखकर आश्चर्य चकित रह गया। अरे, इतना धन का भंडार तो मेरे पास भी नहीं है। राजा अपने महल में गया किन्तु मन की अशांति सुलगती ही रही। राजा ने मन्त्री के समक्ष सारी स्थिति का वर्णन किया। इस जगत् में प्रकृति का एक नियम है- **मनुष्य दूसरे की सम्पत्ति को जब तक नहीं देखता है तब तक अपने पास रही हुई सम्पत्ति में ही सन्तुष्ट होता है किन्तु जब उसकी दृष्टि के सामने दूसरों की सम्पत्ति आती है तो उसके जीवन में ईर्ष्या की आग भभक उठती है।** पानी के भीतर रहे हुए जहाज को वायु अपनी इच्छानुसार घसीटकर ले जाती है उसी प्रकार मनुष्य को वैभव रूपी वायु अपनी ओर खींचकर ले जाती है। मन्त्री ने कहा- यह धन उससे छीन लें, किन्तु अचानक उसके यहाँ छापा मारेंगे तो लोक में हम निन्दा के पात्र बन जाएंगे। इसीलिए मन्त्री एक युक्ति सुझाता हुआ राजा को कहता है- सेठ को अपने यहाँ निमंत्रित कीजिए और उसके आने पर उससे एक प्रश्न पूछिए, यदि वह उत्तर दे दे तो बहुत अच्छा अन्यथा उसे यह कहा जाए- भाई, यह सम्पत्ति तो बुद्धिबल से ही सुरक्षित रहती है, बुद्धि के बिना सम्पत्ति संभाली नहीं जा सकती। इसीलिए सुरक्षा की दृष्टि से तुम्हारी सम्पत्ति राज्य के कोषागार में भेज दो। इस मन्त्रणा के अनुसार सेठ को बुलाया जाता है और उसके सामने एक प्रश्न रखा जाता है। सेठ तो इस बात को सुनकर भौचक्का सा रह जाता है। मन्त्री प्रश्न

पूछता है- हमेशा कौनसा पदार्थ बढ़ता है और घटता है?

छोटी बहू का उत्तर ....

सेठ एक दिन कि अवधि मांगता है। घर आता है। सत्त्वहीन होकर पलंग पर निढाल सा गिर जाता है। अब क्या करना चाहिए? घर के समस्त सदस्यों से पूछता है। राजा और मन्त्री के साथ हुई प्रश्नावली का वर्णन करता है, किसी के भी दिमाग में इसका उत्तर नहीं आता। उसी समय छोटी बहू कहती है- ससुर जी! आप तनिक भी नहीं घबराए। राजसभा में निर्भय होकर कह दें कि आपके प्रश्न का उत्तर मेरी छोटी बहू देगी। दूसरे दिन सेठ राजसभा में जाते हैं और छोटी बहू की बात को ही दोहरा देते हैं। उसी समय छोटी बहू हाथ में घास की पूली और दूध का कटोरा लेकर उपस्थित होती है और राजा से कहती है- हे राजन्! उत्तर देना यह तो नगण्य सी बात है। पहले तो आप कटोरे में रहे हुए दुग्ध का पान कीजिए। राजा कहता है- अरे यह क्या? क्या राजसभा में कभी दूध पिया जाता है? छोटी बहू कहती है- हे राजन्, अभी आप छोटे बालक ही हैं क्योंकि बालक में बुद्धि नहीं होती है, समझने की शक्ति भी नहीं होती है, इसीलिए आप दूध पीते बच्चे ही हो। उसी समय बंधी हुई घास की पूली मन्त्री के समक्ष रखती है और कहती है- यह मन्त्री तो बुद्धि की दृष्टि से पूर्णतः बैल हैं, इसीलिए उसके खाने के लिए मैं यह घास का पूला लाई हूँ। बिना घबराहट के छोटी बहू इस प्रकार बोल जाती है। राजा विचार करता है- यह क्या हो रहा है? छोटी बहू से पूछने पर बहू उत्तर देती है- हे राजन्, आपमें कुबुद्धि युक्त सुझाव देने वाला यह मन्त्री है। मन्त्री में बुद्धि नहीं है, क्योंकि प्रजा की सम्पत्ति और समृद्धि देखकर प्रसन्न होना चाहिए, हड़पने का व्यवहार नहीं होना चाहिए। अब आप अपने प्रश्न का उत्तर सुनिए। **तृष्णा प्रति क्षण बढ़ती जाती है और यह कभी भी घटती नहीं है और निरन्तर घटने वाली वस्तु है आयुष्य! वह सदा घटती जाती है।** जैसे माँ बाप समझते हैं लड़का इतना बड़ा हो गया,

इतने वर्षों का हो गया, किन्तु उसका आयुष्य तो घटता गया।

इच्छाएं आकाश के समान होती हैं ....

उत्तराध्यन सूत्र में इन्द्र और नमिराजा का संवाद आता है। उसमें इन्द्र महाराज प्रश्न करते हैं और संयम के मार्ग पर कदम भरने वाले नमिराजा उतना ही सुन्दर उत्तर देते हैं। इन्द्र महाराज कहते हैं- आप धन भंडार को पूर्ण रूप से भरकर जाइए। नमिराजा उत्तर देते हैं- हे इन्द्र! मनुष्य की तृष्णा निरन्तर बढ़ती जाती है वह कभी भी तृप्त नहीं होती। सुभूम चक्रवर्ती हो गये। इस पृथ्वी पर अधिक से अधिक अनेक बुद्धिशाली चक्रवर्ती हो गये हैं। सुभूम की छः खण्ड विजय के बाद भी तृष्णा बुझी नहीं। वह अन्य छः खण्ड भी जीतने की तैयारी करता है। विमान तैयार करवाता है। १६ हजार देवता उस विमान को उठाकर लवण समुद्र के ऊपर से जा रहे हैं। वहाँ एक देवता को यह विचार आता है कि इतने सब देवगण इस विमान को उठाकर ले जा रहे हैं, तो मैं यदि अकेला हाथ नहीं लगाउँगा तो क्या बाधा उत्पन्न होगी? ऐसा विचार कर वह अपना हाथ खेंच लेता है। उसी समय एक साथ ही १६ हजार देवों को भी इसी प्रकार का विचार आता है और वे सब एक साथ हाथ खींच लेते हैं। फल यह होता है कि वह विमान निराधार होकर समुद्र में गिर पड़ता है। तृष्णा की आग में चक्रवर्ती मरकर सातवीं नरक में जाता है। भगवान् ने श्रावकों के व्रत में बतलाया है न? परिग्रह परिमाण व्रत अर्थात् सम्पत्ति की मर्यादा। यदि यह नहीं बन सकता है तो तुम अपनी इच्छा का परिमाण करो। इच्छा आकाश के समान अनन्त होती है। इस इच्छा को मर्यादा/सीमा में लाने के लिए ही भगवान् ने इच्छा परिमाण व्रत बतलाया है। आज का मनुष्य इतनी लोभ दशा में जीवन जी रहा है, उसकी तो बात ही न की जाए। **लाभ और लोभ के बीच में केवल एक मात्रा का अन्तर है। एक मात्रा अधिक होने से लोभ सर्वदा आगे रहता है और ज्यों-ज्यों लाभ बढ़ता जाता है त्यों-त्यों लोभ बढ़ता जाता है।**

दूसरी तरफ छोटी बहू की बातें सुनकर पूरी राजसभा आश्चर्य चकित हो गई। राजा ने उस छोटी बहू से कहा - बेटी! तूने तो मुझे बहुत बड़े पाप से बचा लिया। तू तो मेरी गुरु है। बाद में मन्त्री को अपने पद से हटा दिया।

सूक्ष्म बुद्धि से धर्म ....

मनुष्य में से गाम्भीर्यता का गुण विदा हो जाने से उसमें छिछोरापन आ गया है और उससे वह परेशान रहता है। एक मनुष्य ने अभिग्रह लिया बीमार की सेवा करने के बाद ही मैं भोजन करूंगा। एक समय ऐसा आया कि पूरे गांव में कोई बीमार ही नहीं रहा। क्षुद्र बुद्धि के कारण वह विचार करता है कि आज मेरा दिन व्यर्थ ही गया। क्योंकि, आज गांव में कोई बीमार नहीं है। ऐसे तुच्छ विचारों के स्थान पर उसे विचार करना चाहिए था कि आज मेरे लिए सोने का सूर्य उदित हुआ है, क्योंकि आज गांव में कोई बीमार नहीं है। बस, इसीलिए शास्त्रकार कहते हैं कि धर्म का सूक्ष्म बुद्धि से परीक्षण करना चाहिए। आचारांग सूत्र में आता है कि यदि घड़ा तिरछा/टेढ़ा हो तो पानी ढुल जाता है किन्तु घड़ा हर दृष्टि से समान हो तो उसमें पानी स्थिर रूप से टिका रहता है। इसी प्रकार धर्म की आराधना करने वाला मनुष्य ऐसी क्षुद्र बुद्धि वाला, हृदय में मलिनता धारण करने वाला और विचारों से वक्र हो तो वह जो भी धर्म करेगा वह निश्चित रूप से ढुल जाएगा। गम्भीर हृदय और सूक्ष्म बुद्धि ही धर्म को स्थिर रखती है।

मनुष्य हृदय को सच्चे भाव से नमाता है
तो उसका परम कल्याण हो जाता है।

धर्म – गुणात्मक है

श्रावण सुदि २

गगन मण्डप में गाय की प्रसूति ....

भगवान् की हृदय से सच्ची भक्ति करने पर, उसके साथ तादात्म्य/सम्बन्ध जोड़ने से सच्चे धर्म की प्राप्ति होती है। उत्तम कुल मिलता है। उत्तम संस्कार मिलते हैं। उसके कारण मनुष्य के हृदय में धर्म करने की प्रवृत्ति जाग्रत होती है। परन्तु, वह धर्म उच्च कोटि का है अथवा धर्म का आभास मात्र है? यह प्रश्न खड़ा होता है।

आनन्दघनजी महाराज कहते है– मैं उसी को गुरु मानता हूँ जो मुझे इस बात का सत्य उत्तर प्रदान करता है।

गगनमंडन में गौआ वीआणी, धरती दूध जमाया।
माखण तो कोई विरला पाया, छाशे जगत भरमाया॥

अर्थात् आकाश में गाय की प्रसूति हुई, जमीन पर उस के दूध का दही जमाया गया, उस दही में से मक्खन तो किसी विरले मनुष्य ने ही प्राप्त किया। और सारा विश्व तो छाछ से ही भ्रमित होता रहा।

भगवान् देशना देते हैं, उस समय वे समवशरण में विराजमान होते हैं। भगवान् की वाणी को आनन्दघनजी महाराज **गगनमंडन में गौआ वीयाणी** ऐसी उपमा देते हैं। उनका वाणी रूप दूध पृथ्वी पर गिरता है किन्तु उसमें से मक्खन रूपी तत्त्व गिनीचुनी आत्माएं ही प्राप्त करती हैं। शेष सम्पूर्ण विश्व तो छाछ के समान क्रियात्मक धर्म में ही भ्रमित होता रहता है।

वर्ण-व्यवस्था ....

अधिकांशतः लोग संसार को मधुर बनाने के लिए धर्म करते हैं। सम्पूर्ण जगत् दुःखभीरु है। मनुष्य जब पापभीरु बनता है तब ही वह धर्म का सच्चा स्वरूप समझ पाता है, ऐसा कहा जाएगा।

दुःखभीरु नहीं पापभीरु ....

पहले हमारे देश में वर्ण-व्यवस्था थी। जिसके कारण समस्त वर्ग एक दूसरे के पूरक होकर रहते थे। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, और क्षुद्र इस प्रकार चार वर्ग थे। जिस वर्ग को जो काम सौंपा गया था उसे वही करता था। क्षत्रियों को देश की रक्षा का काम सौपा गया था। ब्राह्मणों को शिक्षित करने का काम सौंपा गया। वैश्य वाणिज्य- व्यापार करता था। अन्य सभी साफ-सफाई इत्यादि के कार्य क्षुद्र लोगों के अधीन किए गये थे। इस प्रकार कार्य का विभाजन होने से देशवासी बहुत ही सम्पन्न और सुख से जीवन व्यतीत करते थे। देश में राज्यतन्त्र भी बहुत ही सुन्दर ढंग से चल रहा था। आज वर्तमान में वर्ण-व्यवस्था चली जाने के कारण देश में सर्वत्र अराजकता बढ़ गई है।

अधिकार का उपयोग ....

स्त्री द्वारा किया हुआ पाप पति को भी लगता है। यदि पति उसे पापमार्ग से रोकता नहीं तो वह निश्चित रूप से उसे भी लगता है। पति को उसे रोकने का अधिकार है। शिष्य अयोग्य आचरण करता है और गुरु उसे नहीं रोकता है तो वह पाप गुरु को भी लगता है। उसी प्रकार प्रजा पाप करती है और राजा(राष्ट्रपति) नहीं रोकता है तो वह पाप राजा को भी लगता है। उसी प्रकार राजा गर्हित कार्य करता है और पुरोहित उसे नहीं रोकता है तो पाप का भागी पुरोहित भी बनता है। क्योंकि जिस अधिकारी को लोगों को रोकने का अधिकार है, तब भी वह उस बात को अनसूनी कर देता है तो पाप का वह भागीदार बनेगा ही ।

अनीति को धन्यवाद नहीं ....

एक समय की बात है किसी गांव में बाप-बेटे रहते थे। एक दिन दुकान से घर जाते हुए बाप ने पुत्र को कहा- देखो, बेटा मैं घर जा रहा हूँ, तुम जल्दी आ जाना। पिता घर गया, घर जाकर पुत्र की राह देखता

रहा। किन्तु पुत्र को आने में अधिक समय लग जाने के कारण पिता ने भोजन कर लिया। पुत्र घर आया। पिता ने पूछा- वत्स, आज इतना समय क्यों लगा। पुत्र आनन्द में झूमता हुआ बोला- पिताजी! जो पुराना माल पड़ा हुआ था! जिसको कोई नहीं लेता था, एक भद्रिक स्वभाव वाला ग्राहक आ गया उसको मैंने सारा माल बेच दिया। आज तो खुब मुनाफा हुआ है। यह सुनकर पिता को क्या जवाब देना चाहिए? आज के युग का पिता हो तो वह यही कहेगा- बेटा! तूने बहुत अच्छा किया। अब तू दुकान चलाने लायक हो गया। यह धर्म नही धर्माभास है। किसी को ठगने पर मिला हुआ धन क्या स्थिर रह सकेगा? उस पिता ने क्या जवाब दिया? जानना है? उसने कहा- पुत्र! तू दुकान संभालने लायक नहीं है। तूने किसी के साथ विश्वासघात किया है। वह भोला वणिक ठगा नहीं गया बल्कि तू खुद ठगा गया है। अनीति से प्राप्त धन कभी नहीं टिकता है। जिसका हृदय धर्मवासित हो वही उत्तर देगा। बालक कोई भी गलत काम करे तब पिता का यह कर्त्तव्य है कि उसे उपालम्भ देना ही चाहिए और उसे अच्छे मार्ग पर लाना ही चाहिए।

धर्म को समझो ....

एक व्यक्ति जो मुम्बई में निवास करता था। उसने किसी को ब्याज पर रुपये दिये होंगे। उसने ब्याज के रुप में चूस-चूस कर लेनदार को कंगाल बना दिया। फिर भी लेना बाकी रहा। वह देते-देते थक गया। उसने जाकर एक महाराज साहब से बात की। वह ब्याज पर देने वाला भाई प्रतिदिन सेवा-पूजा करता था और व्याख्यान सुनने के लिए आता था। महाराज साहब ने उस भाई से कहा - भाई, तूने जो रुपये ब्याज से दिए थे उसके पास से तूने बहुत कुछ प्राप्त कर लिया है। उस व्यक्ति का जीवन जहरमय बन गया है। अब तो उस ब्याज से उसको मुक्त कर। तब उस सेठ ने कहा- महाराज! इस व्यवहार में पड़ने की आपको जरूरत

नहीं है। आप कहें तो मैं भंडार में १०,०००/- रुपये डाल सकता हूँ किन्तु माफ करने की बात मैं नहीं मान सकता। ऐसे लोगों को क्या कहा जाए? यह कौनसा धर्म है? भगवान् को १०,०००/- रुपये की जरूरत नहीं है। जिसको आवश्यकता है उसको दीजिए न।

गुरु-अपरिश्रावी

श्रावण सुदि ३

जौहरी की परख . . . .

जिस प्रकार जौहरी हीरे को सूक्ष्मबुद्धि से देखता है, परीक्षण करता है तभी वह जौहरी सच्चा हीरा परीक्षक गिना जाता है, उसी प्रकार यहाँ सब अनर्थों के मूल को दूर करने वाला, धर्म रूपी हीरे का सच्चा परीक्षण करने वाला भी सूक्ष्मबुद्धि सम्पन्न मनुष्य गिना जाता है।

भूल स्वीकार = समाधि . . . .

समाधि मरण कब मिलता है? मनुष्य के शरीर के किसी भी अंश में कहीं दु:ख दर्द हो तो वह स्वस्थता का अनुभव नहीं करता है, जो स्वस्थता प्राप्त करनी है तो उसे शल्य/कांटे को दूर करना ही चाहिए। उसी प्रकार मरण के समय समाधि चाहिए तो जीवन में किए हुए पाप रूपी शल्यों की आलोचना करने से समाधि प्राप्त होती है। आलोचना लेना बहुत कठिन है। **भूल करना यह मनुष्य का स्वभाव है किन्तु भूल करने के बाद उसे स्वीकार करना ही उत्तमोत्तम लक्षण है।** मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि जो भूल की है उसको स्वीकार करते हुए भय खाता है। अधिकांशत: उसमें अहंकार भाव ही बाधक बनता है।

चण्डकौशिक . . . .

चण्डकौशिक पूर्वभव में मासक्षमण(एक महीने का उपवास) के पारणे के पश्चात् भी मासक्षमण करता है, परन्तु एक बार भिक्षा के लिए जाते समय एक मेंढकी उसके पैरों के नीचे दब जाती है। साथ में चलता हुआ छोटा साधु गुरु महाराज को बतलाता है- महाराज! यह मेंढकी आपके पैर के नीचे आकर दब गई है। किन्तु अपनी भूल स्वीकारने के

स्थान पर वह क्रोध में आकर बोलता है- क्या वह मेंढकी मरी हुई पड़ी थी या मेरे पैरों से मरी थी? सान्ध्यकालीन प्रतिक्रमण के समय छोटा साधु पुनः याद दिलाता है। गुरुजी आपके पैरों से मेंढकी मर गई थी- इस पाप का स्मरण कराता है। शिष्य की बात सुनकर क्रोधावेश में शिष्य को मारने के लिए दौड़ता है, बीच में खम्भा आ जाता है और उसका सिर उससे टकराता है। अकस्मात् ही मौत हो जाती है। क्रोध की दशा में मरने के कारण वह चण्डकौशिक नाग बनता है। भूल स्वीकार करना कितना कठिन है? यह इस उदाहरण से समझ में आ जाएगा। आलोचना प्रदान करने वाले गुरु को शास्त्रों में अपरिश्रावी कहा गया है। मिट्टी के घड़े में रखा हुआ पानी रिसता रहता है किन्तु तांबे के घड़े में रहा हुआ पानी एक बिन्दु भी रिसकर बाहर नहीं आता है। उसी प्रकार दोषों को सुनने वाले आचार्य महाराज भी तांबे के घड़े के समान होने चाहिए। डॉक्टर शल्य चिकित्सा कर व्याधि को बाहर निकाल देता है, उसी प्रकार आलोचना मन में रहे हुए पापों को बाहर निकाल देती है। प्रतिक्रमण में **देवसिअं आलोउं?** यह पाठ आता है। इस प्रकार पूर्व युग में शिष्य दिन के भीतर हुए स्वयं के दोषों को गुरु महाराज के समक्ष निवेदन पूर्वक कहते थे।

आलोचना - सूक्ष्मबुद्धि से ....

एक गांव के उपाश्रय में कितने ही साधुगण विराजमान थे। वहाँ किसी गीतार्थ गुरु महाराज का पदार्पण होता है। रात्रि प्रतिक्रमण के समय एक के बाद एक साधुगण गुरु महाराज के पास आकर आलोचना मांगते हैं। गुरु महाराज ज्ञानी/गीतार्थ नहीं थे। इसी कारण वे शिष्यों को कहते- वाह! ये शिष्य कितने सरल हैं? जो स्वयं के समस्त दोषों को कह देते हैं। इसी प्रकार वे साधुगण प्रतिदिन वही की वही भूल करते और गुरु महाराज के पास आकर आलोचना मांगते। इस प्रकार दो-तीन दिन प्रसंग चला। गीतार्थ गुरु महाराज यह दृश्य देखते हैं और सूक्ष्मबुद्धि से विचार करते हैं- इस प्रकार दोषों का प्रायश्चित्त तो हो ही नहीं सकता। यही

परम्परा चली तो पूर्ण समुदाय समाप्त हो जाएगा। वे गीतार्थ गुरु समस्त साधुओं को इकट्ठा करते हैं और उनके समस्त एक दृष्टांत रखते हैं। एक नगर में एक मनुष्य रहता था। वह अग्निदेव का भक्त था। अग्निदेव को प्रसन्न करने के लिए वह प्रतिदिन कुछ न कुछ जलाकर अग्निदेव को तर्पण करता था। किसी दिन वह घास का पूला जलाता था तो किसी दिन जीर्ण-शीर्ण मकान आदि भी। राजा भी उसकी अग्निदेव के प्रति भक्ति देखकर उसको प्रोत्साहित करता था। अन्त में एक दिन ऐसा आया कि उसने एक झोंपड़ी में आग लगाई। तेज हवा चली, आग काबू में नहीं आई, आस-पास का सारा महोल्ला जलकर साफ हो गया। इस उदाहरण को देकर गीतार्थ गुरु महाराज कहते हैं- शिष्यों को दोषों का प्रायश्चित देने के स्थान पर आप प्रतिदिन उनके पाप को प्रोत्साहित करते हो। आज एक शिष्य करेगा, दूसरे दिन दूसरा शिष्य भी वही पाप करेगा। पूर्वोक्त उदाहरण के अनुसार सारा महोल्ला जलकर राख हो गया था उसी प्रकार तुम्हारा पूर्ण समुदाय समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार सूक्ष्मबुद्धि वाले गीतार्थ गुरु महाराज ने सामान्य बुद्धिधारक साधु महाराज को बोध दिया। आत्मा यह परमात्मा है। इस कारण हम किसी भी प्रकार का दोषजनित कार्य करेगें, उसी समय भीतर से आवाज उठेगी कि यह तू गलत कर रहा है। हम हृदय की आवाज को बाहर आने भी नहीं देते, भीतर ही भीतर दबा देते हैं।

ऐसी प्रामाणिकता व्यर्थ है....

एक मनुष्य ने कहा- व्याख्यान श्रवण करने के लिए आने वाले सभी मनुष्य बहुत ही प्रामाणिक होते हैं। उसी समय किसी भाई ने पूछा- भाई! यह कैसे? पहला मनुष्य कहता है- भाई देखो, घर में रत्नों के ढेर पड़े हों, बहुमूल्य आभूषण इधर-उधर पड़े हों ऐसी स्थिति में घर में कोई मनुष्य भीतर आ जाए और इन वस्तुओं पर नजर डाले बिना वापस लौट जाए तो उसे हम क्या कहेंगे? प्रामाणिक

ही कहेंगे न? हाँ, तो सुनो, व्याख्यान सुनने वाले श्रोता भी व्याख्यान में अमूल्य जवाहरात से भी अधिक मूल्य वाले धर्म रूपी जवाहरात को हाथ भी लगाते हैं क्या? उन वस्तुओं पर नजरें डाले बिना ही वे धर्मस्थान से वापस चले जाते हैं। ऐसे लोगों को प्रामाणिक नहीं कहेंगे तो क्या कहेंगे?

मूल तत्त्व

श्रावण सुदि ४

दया . . . .

सूक्ष्मबुद्धि से जब धर्म पर विचार करते हैं तब ध्यान में आता है कि धर्म विश्व को शान्ति देता है। किसी भी जीव को पीडा देना धर्म नहीं है। अहिंसा आदि कि उपासना ही भगवान् की उपासना है।

दया धर्मका मूल है, पाप मूल अभिमान,
तुलसी दया न छोडिये, जब लग घटमें प्राण।

धर्म का मूल दया है, दया धर्म की माता है, पाप का मूल अभिमान है। तुलसीदासजी इस प्रकार कहते हैं कि जब तक आत्मा में प्राण है तब तक धर्म नहीं छोड़े ।

धर्म के मूल तत्त्व हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, निष्परिग्रहता। ये पाँचों तत्त्व महत्व के हैं। **साधु धर्म के ये पाँच महाव्रत हैं।**

अहिंसा . . . .

सम्पूर्ण भारतवर्ष के भीतर पतञ्जलि रचित योग ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ में इन पाँच तत्त्वों की व्याख्या बहुत सुन्दर पद्धति से की गई है। जिसकी अहिंसा की साधना पराकाष्ठा तक पहुँची हो उस व्यक्ति के सामने जाते ही दूसरे मनुष्यों के समस्त वैर विकार नष्ट हो जाते हैं। वैर भावना भी दूर हो जाती है। अगर समागम मात्र से इन दूषणों से बच जाते हों, तो जीवन में अहिंसा का समावेश हो जाए तो यह जीवन कितना पवित्र बन जाए।

भगवान् महावीर की अहिंसा की साधना पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थी। इसीलिए उनके समवसरण में बाघ और बकरी एक साथ बैठते थे।

सत्य ....

जिस मनुष्य की सत्य की साधना पराकाष्ठा पर पहुँची हुई हो तो उसमें वचन सिद्धि प्रकट हो जाती है। अरे, वह साधक यदि गूंगे मनुष्य के सिर पर हाथ भी रख दे तो वह बोलने लगता है, ऐसी सिद्धि उनमें प्रकट हो जाती है। इस विषय में युधिष्ठिर सत्यवादी के रूप में प्रख्यात है।

नरो वा कुञ्जरो वा ....

एक समय जब कौरव और पांडवों का युद्ध चल रहा था। सामने द्रोणाचार्य बाणों की वर्षा कर रहे थे। उस समय गुरु द्रोणाचार्य को युद्ध के मैदान से कैसे हटाया जाए? इस प्रश्न पर कृष्ण ने आकर युधिष्ठिर से कहा- आप यदि तनिक भी झूठ बोलें तो यह कार्य सहजता से हो सकता है। तुम्हें यही कहना है- अश्वत्थामा मर गया। अश्वत्थामा द्रोणाचार्य का पुत्र है। पुत्र-मरण के आघात से वे अपने समस्त शस्त्र नीचे रख देंगे। बहुत समझाने पर युधिष्ठिर तैयार हुए। संयोग ऐसा बना कि उस युद्ध स्थल पर अश्वत्थामा नाम का एक हाथी भी था। वह हाथी युद्ध में मारा गया। उस समय सब लोग जोर-जोर से चिल्लाकर बोले - अश्वत्थामा मारा गया। द्रोणाचार्य के कानों में भी यह आवाज पहुँची, वे अश्वत्थामा शब्द से अपने पुत्र की कल्पना कर बैठे। यह बात सत्य है या नहीं! इसकी प्रतीति करने के लिए चलते हुए युद्ध में द्रोणाचार्य युधिष्ठिर के पास आते हैं और पूछते हैं- हे युधिष्ठिर! क्या मेरे पुत्र अश्वत्थामा का मरण हो गया? द्रोणाचार्य के शब्द सुनते ही युधिष्ठिर के समक्ष धर्म संकट पैदा हो गया, इसीलिए युधिष्ठिर ने कहा- **नरो वा कुञ्जरो वा।** अर्थात् अश्वत्थामा की मृत्यु हुई है वह मनुष्य था या हाथी मै नहीं जानता। बस तनिक असत्य उच्चारण करते ही युधिष्ठिर का रथ सत्य के कारण जो जमीन से ऊपर चलता था वह एकदम नीचे आ गया। इसका कारण यह है कि युधिष्ठिर मन में जानते थे कि अश्वत्थामा हाथी की मौत हुई है। जीवन में एक तनिक सा

असत्य बोलने पर जो सत्य की सिद्धि होती है वह चली जाती है। ये सारे व्रत भगवान् के ही एक स्वरूप हैं।

सच्चे सत्यवादी के प्रताप से अग्नि भी स्तंभित हो जाती है।

व्रतों की शक्ति ....

पाँच महाव्रतों में रही हुई शक्ति सामान्य नहीं होती है। उस शक्ति का सामर्थ्य ऐसा प्रबल होता है कि वह समस्त पृथ्वी को कंपित कर सकती है और उन व्रतों में तनिक सी भूल भी भवभ्रमण को बढ़ा देती है।

वसु राजा ....

क्षीरकदम्बक आचार्य के पास नारद, राजकुमार वसु और आचार्य पुत्र पर्वत ये तीनों ही विद्यार्थी शिक्षण प्राप्त कर रहे थे। एक दिन अध्ययन के उपरांत रात्रि के समय थककर वे सब छत पर सो रहे थे। उसी समय आचार्य के कानों में चारण महर्षि के निम्न शब्द सुनने में आते हैं- इन तीनों विद्यार्थियों में से एक स्वर्गगामी है और दो नरकगामी हैं। सुनते ही आचार्य विचार करते हैं कि इन तीन में से दो नरक में कौन जाएंगे और एक स्वर्ग में कौन जाएगा? इसकी प्रतीति करने के लिए प्रातःकाल आचार्य क्षीरकदम्बक भीतर लाख से भरा हुआ और आटे से बना हुआ एक-एक मुर्गा तीनों को दिया और कहा- जहाँ कोई भी न देखता हो वहाँ इसका वध करना। तीनों व्यक्ति अपना-अपना मुर्गा लेकर निर्जन स्थान में जाने के लिए निकलते हैं। वसु और पर्वत किसी निर्जन प्रदेश में जाकर उन मुर्गो का वध कर देते हैं। नारद भी जनरहित जंगल में जाते है। वहाँ वे विचार करते हैं- यह मुर्गा स्वयं देखता है, मैं देखता हूँ, भगवान् देखते हैं, विद्याधर देखते हैं, ऐसी स्थिति में मैं इसका वध कैसे कर सकता हूँ। दूसरी बात, पूज्य आचार्यगण इस प्रकार का हिंसक आदेश दे ही नहीं सकते। आचार्य के वाक्यों में कोई न कोई गंभीर रहस्य अवश्य है, अतः वध किए बिना ही वापस लौट आता है। तीनों व्यक्ति आचार्य के पास

आते हैं। वसु और पर्वत के किए हुए अयोग्य कार्य पर आचार्य उपालम्भ भी देते हैं। उनके इस व्यवहार से आचार्य जान जाते हैं कि मेरा पुत्र पर्वत और राजकुमार वसु नरकगामी हैं। स्वयं के पुत्र को नरकगामी जानकर आचार्य को संसार से वैराग्य हो जाता है और स्वयं संसार छोड़ देते हैं। बहुत समय के पश्चात् वसु राजा बनता है, नारद स्वस्थान पर चला जाता है और पर्वत अध्यापक के रूप में कार्य करता है। पर्वत के पास विद्यार्थी पढ़ने के लिए आते हैं। एक दिन नारद भी घूमते-घूमते वहाँ आ जाते हैं। उस समय पर्वत विद्यार्थियों को पढ़ा रहा था। वह अजा शब्द की व्याख्या करते हुए अजा का अर्थ बकरा करता है। प्रसंग आता है कि यज्ञ में अज का होम करना चाहिए। अज के दो अर्थ होते हैं। गौण/ सामान्य अर्थ होता है, नहीं उगने वाला तीन वर्ष पुराना धान्य। अज का दूसरा अर्थ होता है बकरा। पूर्व आचार्य क्षीरकदम्बक ने अज का अर्थ तीन वर्ष पुराना धान्य ही किया था। यहाँ पर्वत ने बकरा अर्थ किया। नारद और पर्वत के बीच वाद-विवाद हुआ। पर्वत कहता है- गुरुजी ने बकरा ही अर्थ किया था, जबकि नारद कहता है- गुरुजी ने पुराना धान्य ही अर्थ किया था। इन दोनों का वाद-विवाद शर्त के रूप में परिणत हो गया। उन दोनों ने निर्णय किया कि साक्षी के रूप में वसु राजा रहेंगे। हम दोनों उनके पास जाएँ और जो शर्त में हार जाए वह अपनी जिह्वा को काट ले। यह शर्त की बात पर्वत की माता ने सुनी, उसने पर्वत को एकान्त में बुलाकर कहा- हे पुत्र! तूने बहुत जल्दबाजी की। तेरे पिताजी ने अज अर्थात् पुराना धान्य ही किया था। यह बात घर का काम करते हुए मैंने सुनी थी। अब क्या होगा? पुत्र - मोह के कारण पर्वत की माता गुप्त रूप से वसु राजा के पास जाती है और उनके समक्ष दोनों के वाद-विवाद की घटना बतलाती है। साथ ही खोटी साक्षी देने के लिए गुरुमाता के रूप में दबाव भी डालती है। वसु राजा की एक समय में सत्यवादी के रूप से प्रसिद्धि थी और उसका सिंहासन स्फटिक शिला पर निर्मित हुआ था। दर्शकों को ऐसा ही लगता

था कि वह जमीन से ऊपर है। लोगों में यह प्रसिद्धि थी की सत्य के प्रभाव से ही वसु राजा का सिंहासन पृथ्वी से ऊपर अधर रहता है। दूसरे दिन नारद और पर्वत राजसभा में आते हैं और दोनों अपने-अपने पक्ष प्रस्तुत करते हैं। सभ्य रूप में रहे हुए सदस्य राजा को कहते हैं- हे राजन्, आप सत्यवादी हैं इसीलिए जो सत्य हो कहिए। अपने जीवन में कभी झूठ नहीं बोलने वाला वसु राजा झूठी साक्षी देता है- गुरुजी ने अज का अर्थ बकरा किया था.... बस इतने कथन मात्र से निकट में रहे हुए कुलदेवता ने कुपित होकर वसु राजा को सिहांसन से नीचे गिरा दिया। रक्त वमन करता हुआ वसु राजा तत्काल ही मरकर नरक में गया। केवल यही नहीं, उसकी राजगद्दी पर बैठने वाले आठ-आठ वंशज थे। वे प्रत्येक राजा इसी प्रकार मौत को पाकर नरकगामी हुए।

जगत् में तीन तत्त्व महान् हैं। देवतत्त्व गुरुतत्त्व और धर्मतत्त्व। ये तीनों ही तत्त्व यदि जीवन के साथ जुड़ जाएँ तो जीवन धन्य/सफल बन जाए। देवतत्त्व और धर्मतत्त्व को समझाने वाले गुरु होते हैं। 'देवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ कष्टे न कश्चन' देव रुष्ट हो गये तो गुरु बचा लेंगे परन्तु यदि गुरु रुष्ट हो गये तो कोई भी बचा नहीं सकता। गुरुतत्त्व के द्वारा ही समस्त गुणों की प्राप्ति हो सकती है। तीर्थंकर परमात्मा का यह सम्पूर्ण शासन गुरुतत्त्व पर ही चल रहा है।

सम्पूर्ण शरीर- धर्म योग्य है

श्रावण सुदि ७

युवावस्था धर्म के लिए है ....

धर्म योग्य बनने का दूसरा गुण है- पाँचों इन्द्रियों से परिपूर्ण होना।

एक ओर धर्म करते हैं और दूसरी तरफ कटु शब्दों द्वारा दूसरों के हृदय को वींध देते हैं। यह किस प्रकार का धर्म है? धर्म करने वाला व्यक्ति तो कैसा मधुरभाषी और सौम्य होता है। जिसके अंगोपांग पूर्ण होते हैं वह मनुष्य धर्म के योग्य होता है। लूला, लंगड़ा धर्म तो कर सकता है किन्तु सम्पूर्ण अंगोपांग वाला मनुष्य जो भी धर्म करता है उसका आनन्द भिन्न प्रकार का ही होता है। महापुरुष कहते हैं कि जब तक वृद्धावस्था नहीं आती तब तक धर्म कर लो। जिस प्रकार व्यापार-वाणिज्य करने के लिए यौवनवय ही बहुत अच्छा होता है, किन्तु व्यापार तो एक सामान्य वस्तु है। जबकि धर्म जैसी महान् वस्तु प्राप्त करने के लिए यौवनवय बहुत उपयोगी है। आज मनुष्य यह मानता है कि धर्म तो ठेठ पिछली अवस्था में ही करना चाहिए। इस काल में मनुष्य धन के पीछे पागल बना हुआ है। वह धर्म को पूर्णतः भूल जाता है। समस्त कर्मों में अधिक हिस्सा वेदनीय कर्म का ही रहता है। केवलज्ञानी होने पर भी उसको सारे दिन में ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि मैं केवलज्ञानी हूँ। जबकि मनुष्य वेदनीय कर्म भोग रहा हो तो उसे क्षण-क्षण में वह वेदनीय कर्म अपनी याद दिलाता रहता है। शरीर में तनिक सी भी वेदना उत्पन्न हो जाए और मन उसी को सहन करने में लगा रहे तो बताइए भगवान् की भक्ति कैसे हो सकती है? अधिकांशतः वृद्धावस्था में ही वेदनीय कर्म प्रबल होता है।

इसीलिए महापुरुष कहते हैं- वृद्धावस्था में तुम्हारे से धर्म नहीं हो सकेगा। जो मनुष्य कान से बहरा हो वह धर्म तत्त्व कैसे सुन सकता है? आँखों से दिखता न हो तो मनुष्य भगवान् के दर्शन और पुस्तक-वांचन कैसे कर सकता है? भोग स्वयं ही एक प्रकार का रोग है। आप रोग मिटाने की दवा करोगे अथवा रोग बढ़ाने की?

अनाथी मुनि ....

श्रेणिक महाराज घूमने के लिए निकलते हैं। वैसे तो भगवान् की देशना सुनने के लिए भी जाते थे। भगवान् की सेवा में कम से कम एक करोड़ देवता उपस्थित रहते थे। भगवान् का ऐसा अतिशय होता है कि कितने ही अधिक देवता क्यों न हो वे उस समवशरण की सीमा में समाविष्ट हो जाते थे। मार्ग में एक युवा पुरुष साधु वेश को अंगीकार कर ध्यानस्थ खड़ा है। अचानक महाराज श्रेणिक की दृष्टि उस पर गई। अपने वाहन से उतरकर, वहाँ जाकर श्रेणिक महाराज ने उनको नमस्कार किया। यह उस काल की विशिष्टता कहें या कुछ और कहें, किन्तु साधु महाराज को देखते ही राजाधिराज भी उनको नमन करते। साधु को देखकर वह झुक जाता है। श्रेणिक महाराज ने उनसे प्रश्न किया- भगवन्! आपने इस छोटी सी अवस्था में यह मार्ग क्यों स्वीकार किया? संसार-सुख भोगने के बाद निकलना चाहिए था। आपका नाम क्या है? साधु महाराज उत्तर देते हैं- हे राजन्, मेरा नाम अनाथी मुनि है। राजा कहता है- आप अनाथ कहाँ हैं। सम्पूर्ण देश का राजाधिराज मैं आपके चरणों में बैठा हुआ हूँ तब आप अनाथ कैसे हुए? मुनि कहते हैं- हे राजन्! मै अकेला ही नहीं, आप स्वयं भी अनाथ हैं। यह सुनकर राजा कहता है- हे महाराज! आपके कथन के रहस्य को मैं नहीं समझ पाया, स्पष्ट कहिए। मुनि कहते हैं- हे राजन्! सुनो, मै एक देश का राजकुमार था। युवावस्था में मेरे शरीर में एक भयंकर व्याधि उत्पन्न हो गई। उस व्याधि को दूर

करने के लिए नगर के समस्त वैद्य और हकीम चिकित्सा में लग गए किन्तु किसी का भी उपचार लागू नहीं हुआ। माता-पिता रोने लगे। मेरी तरुण पत्नी भी रोने लगी, किन्तु मेरी वेदना में कोई भी भागीदार नहीं बन सका। वेदना में मैं तड़फता रहा। अन्त में मेरे मन में यह विचार जाग्रत हुआ- यह संसार असहाय है। कोई किसी के दु:ख में साथीदार नहीं बन सकता। जीव ने जिस प्रकार के कर्म बांधे है उसे उसी रूप में भोगने पड़ते हैं। जो कर्ज(ऋण) लेता है वह ऋण उसे ही चुकाना पड़ता है। मेरा कोई नाथ/स्वामी नहीं है। मुझे विचार आया कि जीवन में सच्चा नाथ कौन है?

स्मरण में अंतिम, भूलने में पहला ....

जब हमारे ऊपर दु:ख का पहाड़ टूट पड़ता है तब हम भगवान् को याद करते हैं। मनुष्य जीवन में भगवान् को कब याद करते हैं? सबसे पहले अथवा सबके अन्त में? जब हम चारों ओर से आधारहीन हो जाते हैं उस दशा में भगवान् को याद करते हैं और जब आधि, व्याधि, उपाधि दूर हो जाती है तो हम सबसे पहले किसको भूलते हैं? भगवान् को। स्मरण करते हैं सबके अन्त में और भूलते हैं सबसे पहले। इसी कारण भगवान् के साथ हमारा सम्बन्ध जुड़ नहीं पाता। चण्डकौशिक जब भगवान् को काटने के लिए आता है तो सबसे पहले भगवान् के समक्ष दृष्टि फेंकता है। कुछ भी प्रभाव नहीं होता है तो वह सूर्य के सन्मुख देखकर दृष्टि डालता है, फिर भी कुछ नहीं होता है। अन्त में वह काटता है किन्तु उसी समय चमत्कार होता है। इतने-इतने मारने के उपाय करने पर भी उसके ऊपर भगवान् की कैसी करुणा! **बुज्झ-बुज्झ चण्डकोशिया**। हे चण्डकौशिक! समझ-समझ। प्रेम से भीगे हुए कैसे उद्गार निकलते हैं कि क्रोधी से क्रोधी और जहरी से जहरी सर्प भी स्तंभित हो जाता है। वह चण्डकौशिक अनशन स्वीकार करके स्वर्ग में पहुँच जाता है। ऐसे भयंकर विषधर के सामने जाकर भी

उसको तार दिया। हम भी जो स्नेह से उस प्रभु के साथ सम्बन्ध बांधे तो वह इस सम्बन्ध को किसी भी दिन तोड़ेगा नहीं। कदाचित् हम उसे तोड़ भी दें तो भी....

अनाथीमुनि का संकल्प ....

मुनि महाराज कहते हैं- मरणावस्था में पड़े हुए मैने मन में संकल्प किया कि जो यह काया रोगरहित हो जाए तो मैं भगवान् को समर्पित हो जाऊँगा। मराठी में एक कहावत है- **सत्य संकल्पाचा दाता भगवान् आहे।** संकल्प सत्य होता है तो भगवान् उसे अवश्य पूर्ण करते हैं। भगवान् उसकी सहायता को आए। आत्मा के भीतर ही परमात्मा निवास करता है। भगवान् कोई बाहर से नहीं आते हैं? व्याधि शान्त हो गई। छः-छः महीने से भोग रहे मेरी उस भयंकर पीड़ा को नष्ट होते हुए देर नहीं लगी।

स्वस्थ होने के बाद मैने घर के समस्त सदस्यों से आज्ञा मांगी कि मै जा रहा हूँ। आज हम सामान्य सा एक नियम भी अखण्ड रूप से नहीं पाल सकते। हम नियमों में, किसी न किसी प्रकार मार्ग निकाल लेते हैं। इसी कारण हमारे साथ भगवान् भी मार्ग निकाल लेते हैं। भगवान् के साथ हम सम्बन्ध बांधते ही नहीं। मुनि महाराज दृढ़ संकल्पी थे। हमारे जैसे नहीं कि स्वस्थ हुए और भूल गये। माता-पिता, स्त्री, और प्रजागण सब सामने आए, जाने के लिए कोई भी आज्ञा देने को तैयार नहीं था। माता-पिता स्नेही-स्वजनों के रोकने पर भी वह निकलकर भगवान् को समर्पित हो गया। जब तक अंगोपांग पूर्ण हो, बुद्धि बराबर काम देती हो तभी धर्म कर लो। शास्त्रों में भी देखते हैं कि महापुरुष छोटी उम्र में ही दीक्षित हो जाते हैं, वे शासन के चमकते हुए सितारे बन जाते हैं। हरिभद्रसूरि जी महाराज, हेमचन्द्राचार्य, विजयहीरसूरिजी महाराज और उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज आदि।

श्रावक की व्याख्या ....

संस्कृत में **श्रु** नाम की धातु है उसको **णक्** प्रत्यय लगाने से उसकी वृद्धि, श्रु + णक् - श्रौ + अक श्रावक, शृणोति इति श्रावकः, जो सर्वदा जिनवाणी को सुनता है वह श्रावक कहलाता है। सर्वदा नियमित रूप से जिनवाणी क्यों सुननी चाहिए? मनुष्य को जब रोग होता है वह नियमित रूप से दवा का सेवन करता है। इसी प्रकार हम भी राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि कितने ही रोगों से ग्रस्त हैं। **इन समस्त रोगों का औषध है शास्त्र-श्रवण**। औषध का नित्य पान करना होता है, बीच में यदि छोड़ देते हैं तो वह औषध फलदायी नहीं होती है।

नोरवेल - जिनवाणी ....

साँप और नौलिया जब आमने-सामने होते हैं तो आपस में खूब झगड़ते है। साँप उसको काटता है और नौलिया भी उसको काटता है। जब साँप नौलिया को काटता है तब वह भागकर नोरवेल नाम की वनस्पति के पास जाकर उसको सूंघ कर आता है। नौलिया समझता है उस वनस्पति को सूंघने से जहर का नाश होता है। इस प्रकार जहर उतारकर पुनः लड़ने के लिए आता है। इस प्रकार वे आपस में बारम्बार लड़ते हैं और आखिर में सर्प को वह मार डालता है।

हमारे शरीर में भी प्रतिक्षण इन्द्रियों द्वारा विष चढ़ता रहता है। कान से सुनें तब भी और आंख से देखें तब भी विष चढ़ता है। किसी का सुख देखकर हमारे मन में भी लालसा उत्पन्न होती है और जब तक उस प्रकार का सुख प्राप्त नहीं कर लेते तब तक हमारे जीवन में शान्ति नहीं आ पाती। दूसरे की वस्तुओं को देखकर उसको प्राप्त करने की हमारी भी अभिलाषा होती है। परन्तु, किसी दिन साधु का वेश देखकर कभी ऐसा भी विचार आता है कि हम कब साधु बनेंगे। साधु का सुख तो संसार के सुख की अपेक्षा अनेक गुणा है। इस सुख की किसी दिन इच्छा होती है? **समस्त**

इन्द्रियों के द्वारा चढ़ते हुए जहर को दूर करने की एक मात्र शास्त्र ही वनस्पति रूप है। प्रतिदिन श्रवण से मोह का विष धीरे-धीरे कुछ कम होता जाता है। शास्त्रवाणी नहीं सुनते हैं तो जीवन में अधिक से अधिक जहर फैलता जाता है।

श्रावक की दूसरी व्याख्या . . . .

जिसमें श्रद्धा, विनय और क्रिया ये तीनों वस्तुएं एकत्रित होती हैं तब वह श्रावक बनता है। अनाथीमुनि की बात सुनकर श्रेणिक महाराज को ऐसा प्रतीत हुआ कि वास्तव में मैं अनाथ हूँ। बस, सबका एक नाथ है महावीर।

रसे जीते जीतं सर्वम्

श्रावण सुदि ८

पाँच पर संयम ....

धर्म करने वाले श्रावक के दूसरे गुण का वर्णन चल रहा है। श्रावक पाँचों इन्द्रियों से परिपूर्ण होना चाहिए, साथ ही उन पर संयम रखने वाला भी होना चाहिए। जो इन्द्रियों पर संयम नहीं रखता है वह मनुष्य कहीं का कही फेंक दिया जाता है।

एक पर चार का आधार ....

रसनेन्द्रिय पर चारों इन्द्रियों का आधार है। कुछ दिन पर्यन्त भोजन नहीं किया जाए तो एक भी इन्द्रिय काम नहीं देती है। मनुष्य आहार का त्याग करता है उससे समस्त विषय शान्त हो जाते हैं। किन्तु, विषयों की ओर का रस उसे नहीं छोड़ता है। कोई मनुष्य उपवास करता है अर्थात् उस दिन तो वह आहार छोड़ देता है किन्तु पारणे में तूफान का प्रारम्भ हो जाता है। एक वस्तु कम आती है अथवा ठंडी आती है तब दिमाग बिगड़ जाता है। यह रस कब छूटेगा? ज्ञानी भगवान् कहते हैं- यदि परमात्मा का रस हमारे जीवन में जाग्रत हो जाए तो समस्त रस छूट जाते हैं। इस रसनेन्द्रिय से तो युगप्रधान आर्य मंगु जैसे भी अपने मार्ग से भटक गये थे।

आर्य मंगु ....

आर्य मंगु नाम के एक महान् आचार्य हुए हैं। वे शास्त्रों के जानकार और युगप्रधान पुरुष थे। उनके समय में मथुरा जैन धर्म का केन्द्रस्थान था। इसी कारण आचार्य भगवान् वहाँ बारम्बार आते रहते थे। ऐसे युगप्रधान पुरुष वहाँ विराजमान होने से चारों ओर से श्रद्धालुगण उनके दर्शनार्थ वहाँ आते थे और भक्ति से स्वादिष्ट से स्वादिष्ट वस्तु

आचार्यश्री के शिष्यों को वहोराते थे। वे आचार्य स्वयं महाज्ञानी थे। फिसलन वाले स्थान पर पग आ जाए तो मनुष्य फिसलेगा ही। इसी प्रकार इन्द्रियाँ फिसलाने वाली हैं। कुछ समय तक तो आचार्य महाराज निर्लेप रहे। रसनेन्द्रिय ने अपना प्रभाव जमाया, फलतः आचार्य महाराज अधिक समय मथुरा में निवास करने लगे। भद्रिक भक्तगण श्रद्धा से भिन्न-भिन्न स्वादिष्ट पक्वानों के द्वारा आचार्य महाराज की भक्ति करने लगे। आचार्य महाराज की वृद्धावस्था आ गई। उनको स्वादिष्ट भोजन रुचिकर लगने लगा। अर्थात् आचार्य महाराज आसक्ति से भोजन करने लगे। वहीं यमराज की घंटी बजी, आचार्यश्री का स्वर्गवास हो गया। मथुरा नगरी के बाहर एक गंदा नाला है। साधुगण वहाँ प्रतिदिन स्थंडिल / निपटने के लिए जाते थे। साधुगण वहाँ जाते हैं तब उन्हे एक विकराल आकृति दिखाई देती है। यह क्रम आठ-दस दिन तक चला। साधुगण भयभीत हो गये। साधुमण्डली ने विचार कर निर्णय लिया कि आज सब लोग मिलकर एक साथ जाएंगे। पूरी मण्डली उस स्थान पर जाती है। वह मण्डली देखती है कि वह विकराल आकृति जिसके मुख में से जीभ बाहर निकल-निकलकर चटकारा मार रही है। साधुगण हिम्मत करके उससे पूछते हैं- तुम कौन हो और हम सबको क्यों डरा रहे हो? उत्तर में विकराल आकृति बोली- मैं तुम्हारा गुरु आर्य मंगु हूँ। तुम लोगों को भयभीत करने के लिए मैं यहाँ नहीं आता, किन्तु उपदेश देने के लिए आता हूँ। रसनेन्द्रिय की लालसा छोड़ दो। इसी लालसा से इस नाली पर मैं व्यंतर देव के रूप में उत्पन्न हुआ हूँ। भविष्य में तुम्हारी भी यह दशा न हो इसीलिए तुम सबको चेतावनी देने के लिए मैं यहाँ आया हूँ। तुम सब लोग यहाँ से शीघ्र ही विहार कर दो और भविष्य में भी जिह्वा के स्वाद में आसक्ति मत रखना।

आर्य मंगु जैसे ज्ञानी युगप्रधानों की भी ऐसी दयनीय दशा हो जाती है तो हमारी दशा कैसी होगी?

जिह्वा के दो काम ....

कुदरत ने जिह्वा को दो काम सौंपे है। १. खाने का और २. बोलने का। जिस मनुष्य का जिह्वा पर अधिकार नहीं होता उसके जीवन में सदाचार, तप और त्याग देखने में नहीं आता। ये समस्त झगड़े किस कारण से होते हैं? एक मात्र जिह्वा से ही न? अरे! **हड्डी रहित यह जीभ अनेक मनुष्य की हड्डियों का चूरा बनाने में देर नहीं लगाती।**

एक समय दाँत और जीभ के बीच में संवाद हुआ। दाँत ने जीभ को कहा- जीभ! तू चुपचाप बैठ जा, क्योंकि तू बत्तीस राक्षसों के बीच में रही हुई है। जो हमारी बत्तीसी के बीच में आ गई तो तेरा कचूमर निकल जाएगा। यह सुनकर जीभ ने कहा- अरे राक्षसों! तुम भी सीधे चलो, अन्यथा तुम सभी को एक झटके में समाप्त कर दूँगी। बोलने पर संयम न हो तो बत्तीसी भी गिर जाती है। यही जीभ लोगों का कल्याण भी कर सकती है।

इन्द्रियों में रसनेन्द्रिय को जीतना बहुत कठिन है। गुप्तियों में मनोगुप्ति को जीतना दुष्कर है और व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन दुष्कर है।

धर्म के मूल तत्त्व - अहिंसा,
सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य
अपरिग्रह हैं।

परिशीलन से प्राप्ति

श्रावण सुदि ९

घास ही दूध बन जाता है ....

धर्म को जीवन में इस प्रकार गूंथना/एकमेक करना चाहिए कि हमारे जीवन से किसी को धर्म की प्राप्ति हो तभी हमें धर्म मिलना सुलभ बन सकता है। किन्तु, हमारे व्यवहार के द्वारा किसी दूसरे को अधर्म की प्राप्ति हो तो हमारे लिए भी धर्म का मिलना दुर्लभ हो जाता है। व्याख्यान पूर्ण रूप से कब पचता है? जो उसका बारम्बार परावर्तन अर्थात् चिन्तन-मनन होता है तभी उसका वास्तविक रहस्य समझ में आता है। गाय भी पहले जल्दी से खाती है और फिर आराम के क्षणों में जुगाली करती है तभी उससे हमें दूध की प्राप्ति होती है। जानते हो भगवान् वज्रस्वामी कैसे बने? एक ही वाक्य का उन्होने पाँच सौ बार परिशीलन किया था और उसी कारण से उन्हे पदानुसारिणी लब्धि मिली थी।

गौतमस्वामी अष्टापद पर्वत पर ....

एक समय भगवान् ने देशना में कहा- जो व्यक्ति स्वयं की आत्मलब्धि से अष्टापद पर्वत पर जाता है वह उसी भव में मोक्ष जाता है। गौतमस्वामी को ऐसा प्रतीत हुआ की भगवान् मुझे ही कहते हैं कि हे गौतम! तू तद्‌भव मोक्षगामी है। क्यों न, अपनी आत्मलब्धि से अष्टापद पर्वत पर जाकर इस बात का निर्णय ही कर लूं। ऐसा निर्णय कर गौतमस्वामी आत्मलब्धि से सूर्य की किरणों का आश्रय लेकर अष्टापद पर्वत पर पहुँचे और वहाँ **जगचिंतामणि** स्तोत्र की रचना की। दर्शन करने के उपरान्त वे एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। उनके दर्शनों के लिए देवगण वहाँ आते हैं, उन देवों में कुबेरभंडारी देव भी था। गौतम स्वामी देशना देते हैं। देवगुरु का स्वरूप समझाते हैं। गुरु का स्वरूप समझाते हुए

कहते हैं- गुरु निष्परिग्रही होता है, तपस्वी होता है, रूखा-सूखा भोजन करता है आदि। यह वर्णन सुनकर और गौतमस्वामी की हृष्ट-पुष्ट काया देखकर कुबेर देव को हंसी आती है। गौतमस्वामी सर्वदा छट्ठ के पारणे छट्ठ की तपस्या करते थे किन्तु भगवान् के आशीर्वाद से, ज्ञान से, समता से और प्रसन्नता से उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट था। केवल खुराक ग्रहण करने से उनका शरीर स्थूल नहीं था। प्रसन्नता ही आत्मा और देह की सच्ची खुराक है। गौतम स्वामी यह समझ जाते हैं कि मेरे शरीर को देखकर ही मेरे वचनों पर देव हंस रहा है। उसके संशय को दूर करने के लिए कंडरीक-पुंडरीक का कथानक सुनाते हैं।

कंडरीक-पुंडरीक ....

कंडरीक और पुंडरीक राजपुत्र थे। दोनों सगे भाई थे। किसी स्थवीर महात्मा का उपदेश सुनकर उन दोनों को वैराग्य उत्पन्न हुआ। दोनों भाईयों के बीच में चारित्र-ग्रहण को लेकर घर पर वाद-विवाद हुआ। वह कैसा समय होगा? जहाँ संसार छोड़ने के लिए दो भाई आपस में मीठा झगड़ा करते थे। आज तो पैसे के लिए भाई-भाई के विरुद्ध अदालत में जाते हैं और रिवालवर से भाई को खत्म भी कर देते हैं। इन दोनों भाईयों में से छोटे भाई ने दीक्षा ग्रहण की और वह कंडरीक मुनि बना। अनुक्रम से गुरु के साथ विहार करते हुए कंडरीक मुनि ने बहुत ही उच्च कोटि का संयम पालन किया। उनकी तप साधना भी बड़ी कठोर थी। १ हजार वर्ष पर्यन्त तप करते हुए उनका शरीर सूख कर कांटा हो गया था। अन्त-प्रान्त भोजन से उनके शरीर में अनेक व्याधियाँ भी उत्पन्न हो गई थीं, किन्तु आत्मा का आनन्द अपूर्व होता है। एक समय विहार करते हुए कंडरीक मुनि अपने संसारी भाई पुंडरीक राजा की नगरी पुंडरीकिणी पधारे। पुंडरीक राजा गुरुवंदन के लिए उपवन में गये। स्वयं के भाई महाराज को अत्यन्त कृशकाय देखकर उन्होने गुरुदेव से विनंती की- गुरुदेव, मेरे बन्धु मुनि को थोड़े दिन के लिए यहीं पर रहने की

इजाजत दीजिए। मुझे उनकी सेवा का लाभ मिलेगा। गुरु महाराज ने राजा का आग्रह देखकर स्वीकृति प्रदान कर दी। राजमहलों में रहते हुए राजपरिवार की सेवा और प्रतिदिन गरिष्ठ आहार-पानी मिलने से कंडरीक मुनि का शरीर भी पुष्ट बनता जाता है। इधर मुनि का शरीर पुष्ट बनता है और उधर उनके चारित्रिक जीवन में शिथिलाचार भी बढ़ता जाता है। आत्मा के परिणाम कमजोर होते जाते हैं। राजा पुंडरीक को जब यह सूचना मिली तो उसके हृदय को आघात लगा। स्वस्थ होने पर भी मुनि विहार करने का नाम नहीं लेते थे। राजा पुंडरीक ने विहार करने के लिए युक्ति पूर्वक प्रेरणा दी। और, कोई रास्ता न देखकर अनिच्छा पूर्वक कंडरीक मुनि ने वहाँ से विहार किया। सुखशील जीवन के अभ्यस्त हो जाने के कारण चारित्रिक कठिन जीवन से कंडरीक का दिल ऊब गया। फलतः कुछ समय बाद गुरु से अलग होकर उस नगरी में आते हैं। नगर के बाहर उद्यान में साधु वेश के उपकरणों की गांठ बाँधकर झाड़ पर लटका दी और स्वयं निराश होकर उसके नीचे बैठ गये। राजा की दासी ने इस घटना को देखा और वह पहचान गई कि यह कंडरीक मुनि ही हैं। उस दासी ने राजा को समाचार दिये। इसीलिए स्वयं राजा पुंडरीक वहाँ आते हैं। दूर से देखकर राजा समझ गया कि कुछ गड़बड़ है। राजा ने अनेक प्रकार से कंडरीक को समझाया किन्तु वह सुखशीलिया नहीं माना। अन्त में कंडरीक को राजगद्दी पर बिठाकर स्वयं पुंडरीक ने चारित्र ग्रहण कर लिया। कंडरीक चारित्र को छोड़कर राजमहलों में रहने के लिए आए थे इस कारण परिवार के लोग उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। फलतः कोई भी उसकी आज्ञा को स्वीकार नहीं करता था। कंडरीक ने पहले ही दिन खूब रस पूर्वक स्वाद ले लेकर ठूंस-ठूंस कर खाना खाया, किन्तु कमजोर शरीर होने के कारण वह उसे पचा नहीं सका। रात में ही उसके पेट में भयंकर उदरशूल हुआ। एक ओर पेट की भयंकर वेदना और दूसरी तरफ राजकीय आदमियों का अनादर, इन दोनों

यातनाओं को भोगता हुआ कंडरीक अत्यन्त तीव्र अशुभ विचार करता है। मैं इस वेदना से मुक्त हो जाऊं तो प्रातः काल ही इन राजकीय आदमियों को मार-मारकर ठीक कर दूंगा। ऐसे क्लेश युक्त परिणामों से ग्रस्त होकर कंडरीक मृत्यु प्राप्त करता है और सातवीं नरक में पहुँच जाता है। इधर पुंडरीक राजर्षि चारित्र की आराधना करके सर्वार्थसिद्धि देवलोक में उत्पन्न होते हैं और भविष्य में मोक्ष जाएंगे।

इस प्रकार देशना देते हुए गौतमस्वामी कुबेर देव को कहते हैं- भाई! पुण्य-पाप के कारण शुभ और अशुभ ध्यान है। शरीर के आकार से कोई निर्णय नहीं किया जा सकता, उसके अध्यवसाय पर ही सब कुछ आधार है। साधु का शरीर यह उसका बाह्य स्वरूप है जबकि ध्यान उसका अभ्यन्तर स्वरूप है। देशना पूरी होती है। गौतमस्वामी पर्वत से नीचे आ जाते है। कुबेर देव भी वहाँ से देवलोक चले जाते हैं। इस वार्ता के समय साथ में रहे हुए देवों में से एक देव ने पाँच सौ बार इसका परिशीलन किया। वह देव वहाँ से च्युत होकर वज्रस्वामी बनता है। उत्तम परिशीलन से भी मनुष्य में कैसे संस्कार सिंचित होते हैं। अतः व्याख्यान-श्रवण के पश्चात् उसका गहन चिन्तन करना अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु हम तो श्रवण मात्र में ही अटक गये हैं।

मनुष्य मृत्यु प्राप्त होने पर तीन वस्तुएँ साथ लेकर जाता है - पुण्य, पाप और संस्कार। संस्कार में विनय, विवेक, सदाचार, क्षमा और परोपकार सबसे अधिक महत्त्व के हैं। यहां से हम जहाँ भी जाएँगें वहाँ पूर्वजनित संस्कारों पर ही हमारे जीवन की रचना होगी। पुण्य से सुख मिलेगा, पाप से दु:ख और श्रेष्ठ संस्कारों से जीवन उज्ज्वल बनता है। यह सब हमारे ही हाथ में है।

प्रकृति से सौम्य

श्रावण सुदि १०

नहीं देखने पर कल्याणकारी . . . .

धर्म के योग्य श्रावक का तीसरा गुण है **प्रकृति से सौम्य**। धर्म करने वाला व्यक्ति प्रकृति से सौम्य होना ही चाहिए, वह शान्त हो, निष्कपटी हो। जो व्यक्ति धर्मी कहलाता है वह चाहे जितना भी धर्म करे परन्तु उसके स्वभाव में तनिक भी सरलता न हो, तनिक भी सौम्यता न हो तो उसे धर्मी कैसे कहें? क्रोध में मनुष्य सीमा से बाहर कटुवचन बोलता है। ऐसे मनुष्यों को शास्त्र में कांटेदार वृक्ष की उपमा दी गई है। बबूल देखने में हरियाला होता है किन्तु पास जाने पर वह अपने कांटे चुभाये बिना नहीं रहता। दूसरी एक सूक्ति प्राप्त होती है- **अदीठे कल्याणकरा:**। अर्थात् इसको नहीं देखने मे ही कल्याण है। ऐसे मनुष्य चाहे जितना धर्म करें किन्तु वह अशान्ति का ही कारण बनता है। क्रियाकांड यह तो धर्म का बाह्य स्वरूप है। ज्ञान और क्रिया से मोक्ष मिलता है यह सच्ची बात है, किन्तु ज्ञान क्या है और क्रिया क्या है? क्रोध को बुरा समझना यह ज्ञान है और उसका त्याग करना क्रिया है।

नौ प्रकार के कायोत्सर्ग . . . .

शास्त्रों में ९ प्रकार के कायोत्सर्ग कहें है-

१. **खड़े-खड़े :-** खड़ा होकर कायोत्सर्ग करता हो और उसकी विचारधारा भी ऊँची हो।

२. **खड़े-बैठे :-** कायोत्सर्ग तो खड़ा-खड़ा करता हो, किन्तु उसकी विचारधारा निम्न कोटि की हो।

३. **खड़े-सोये :-** कायोत्सर्ग खड़ा-खड़ा करता हो, किन्तु प्रमाद में व्यस्त हो। आर्त ध्यान में डूबा हुआ हो।

४. **बैठे-खड़े** :- शरीर की शिथिलता के कारण कायोत्सर्ग बैठे-बैठे करते हुए भी विचारधारा अत्यन्त उन्नत हो।

५. **बैठे-बैठे** :- कायोत्सर्ग बैठे-बैठे करते हुए भी जिसकी विचारधारा निम्नकोटि की हो।

६. **बैठे-सोये** :- बैठे-बैठे कायोत्सर्ग करता हो किन्तु प्रमाद अथवा आर्तध्यान में डूबा हुआ हो।

७. **सोया-खड़ा** :- किसी बीमारी के कारण कायोत्सर्ग सोते हुए करता हो किन्तु विचारधारा बहुत ही ऊँची चलती हो।

८. **सोये-बैठे** :- सोते-सोते कायोत्सर्ग करते हों और मन भटक रहा हो।

९. **सोये-सोये** :- सोये हुए कायोत्सर्ग कर रहा हो किन्तु वह पूर्ण रूप से अव्यवस्थित हो।

इस प्रकार मनुष्य को समझकर धर्म करना चाहिए कि धार्मिक क्रिया मन के शुभ-अशुभ भावों (विचारों) के आधार पर ही फल देती है।

सरलता ....

धर्म करने वाला मनुष्य सरल प्रकृति का होना चाहिए। एक महिला किसी सन्त के पास जाती है और कहती है- हे महात्मन्! मेरे जीवन में शान्ति हो ऐसा कोई मन्त्र दीजिए। सन्त ने उसे एक मन्त्र लिखकर दिया। मन्त्र था- ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। सन्त से मन्त्र को उसने अवश्य लिया किन्तु वह बहुत ही भोली थी। उसके पति का नाम वासुदेव था। उसने विचार किया- मैं अपने पति का नाम कैसे लेऊं? पहले के समय में पति का नाम कोई भी स्त्री नहीं लेती थी। इसीलिए उसने एक खोज करके रास्ता निकाल लिया। मन्त्र में कुछ फेर-बदल कर दिया - ॐ नमो भगवते बालक के पिताय। कैसी सरलता है?

प्रतिछाया को नहीं, वस्तु को पकड़ो ....

छट्ठ करके सात यात्रा करने वाला मनुष्य कितना कष्ट सहन करता है। वही मनुष्य पड़ौसी के साथ बोलचाल हो जाए तो उसके मकान की तीन सीढ़ियां चढ़कर उसे क्षमायाचना करने के लिए नहीं जा सकता,

क्योंकि उसके हाथ में धर्म का आभास रहा हुआ है। भगवान् के साथ जब सच्चा सम्बन्ध होता है तब हृदय की ग्रन्थि विभाजित/नष्ट कर दी जाती है। जिस काल में प्रतिक्रमण नहीं था, चातुर्मास नहीं था, कोई पर्व नहीं था, क्षमायाचना की कोई विशिष्ट पर्व क्रिया नहीं थी। तब भी उस काल में अधिक प्रमाण में बहुत से लोग मोक्ष जाते थे। जबकि इस काल में सुबह शाम प्रतिक्रमण है फिर भी कोई मोक्ष में नहीं जाता। बहुत धर्म करने पर भी ऐसे संयोग बनते है कि मनुष्य धर्म अथवा परमात्मा को प्राप्त नहीं कर पाता, क्योंकि मनुष्य ने केवल धर्म की छाया ही पकड़ रखी है। उसने मूल वस्तु को छोड़ दिया है। जिस प्रकार धर्म उत्कृष्ट में उत्कृष्ट मंगल है उसी प्रकार स्वभाव की सौम्यता भी उत्कृष्ट में उत्कृष्ट मंगल है। साधना और शान्ति देने वाला साधु कहलाता है।

सन्त किसे कहें? शान्ति देने वाला सन्त कहलाता है। साधना कराने वाला साधु कहलाता है। हम साधु-सन्त एक साथ उच्चारण करते हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि साधना और शान्ति दोनों को देने वाला साधु-सन्त कहलाता है। ऐसे रात-दिन विश्व के कल्याण की कामना करने वालों के भी कई निन्दक होते हैं। एक महात्मा गाँव में होकर जा रहे थे। उस समय चबूतरे पर बैठा हुआ एक मनुष्य बोल उठा - देखो, उठावगिर जा रहा है। देखो, ठगी करने के लिए जा रहा है। देखो न, अपने परिवार की बढ़ोतरी करने के लिए जा रहा है। सन्त महात्मा बहुत संतोषी थे, बहुत शान्त प्रकृति के थे। उन्होने विचार किया- भले ही उसने कहा हो, उसने मुझे मारा तो नहीं? सन्त की कैसी सौम्यता।

इन्द्रियों में रसनेन्द्रिय को जीतना अधिक दुष्कर है।
गुप्तियों में मनोगुप्ति को जीतना अधिक दुष्कर है।
व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत को जीतना अधिक दुष्कर है।

समता की साधना

श्रावण सुदि ११

स्वभाव परिवर्तन आवश्यक है . . . .

मनुष्य को जब सम्यक्त्व का ज्ञान हो जाता है और उस सम्यक्त्व में निरन्तर दृढ़ता आ जाती है तो उसका अधिक से अधिक सातवें-आठवें भव में मोक्ष हो जाता है। शास्त्र में कहा गया है कि इस जीव ने पूर्वजन्मों में मेरु पर्वत के समान ओघा/रजोहरण ग्रहण किया होगा। व्रत-प्रत्याख्यान किए होंगे, परिषहों को सहन किया होगा? तब भी इस जीव को मोक्ष क्यों प्राप्त नहीं हुआ? इसका कारण यह है कि प्रत्येक जन्म/जीवन में तात्त्विक धर्म की प्राप्ति नहीं हुई। इसीलिए इस जीव को इस संसार में भटकना पड़ा है। मनुष्य को कभी यह विचार आता है कि वास्तव में मेरा स्वभाव बदलने योग्य है? प्रत्येक को यह लगता है कि मेरा स्वभाव तो अच्छा है उसे दूसरे के स्वभाव में ही दोष नजर आते हैं। हमें पश्चिम की ओर जाना हो तो पश्चिम दिशा में ही चलना पड़ेगा। हमारे लिए कोई पश्चिम का रास्ता पूर्व में नहीं आ जाएगा। गाड़ी हो तो उसे पूर्व में से पश्चिम की ओर घुमा सकते हैं किन्तु पश्चिम में गांव हो तो उसे पूर्व में नही ला सकते। आप दूसरे मनुष्य को बदलने का अथवा उसके स्वभाव को बदलने का विचार मत करो, किन्तु तुम अपने स्वभाव की ओर तथा खुद के ही दोषों की तरफ नजर डालो।

तू जला तो नहीं न ?. . . .

एक मनुष्य ने बड़े-बड़े सेठों को भोजन करने का आमंत्रण दिया। स्वयं भी अच्छा धनिक था। भोजन स्थल पर पाटे बिछा दिए गये। सब लोग भोजन के लिए बैठ गये। दूधपाक/खीर तैयार थी। सेठ ने रसोइये को आदेश दिया कि पहले दूधपाक का बर्तन लाओ। रसोइया लेने

के लिए जाता है किन्तु लाते हुए बर्तन गिर पड़ता है और सारा दूधपाक भट्ठी में गिर जाता है। सेठ एकदम छलांग मारकर रसोइये का हाथ पकड़ लेता है और कहता है - हे भाई, तू कहीं जला तो नहीं न? भले ही दूधपाक ढुल गया हो। सब लोग यह सुनकर स्तब्ध हो गये। बहुत से तो यह समझ रहे थे कि रसोइया को अभी दो चार थप्पड़ लगा देंगे। परन्तु, उसके स्वभाव में सौम्यता थी। उसने सब लोगों के सामने जाकर कहा-भाईयों! मुझे माफ कर दो, आज यह घटना घट गई इसका मुझे हृदय से खेद है। दूधपाक के अतिरिक्त जो भोजन बना हुआ है, मैं आपको परोसता हूँ। सब लोग वाह वाह बोलते हुए कहने लगे। सेठजी दूधपाक तो हमने बहुत बार खाया है किन्तु ऐसी सज्जनता और स्वभाव में सौम्यता हमने कहीं नहीं देखी।

महात्मा अंगर्षि . . . .

प्रकृति की सौम्यता से मनुष्य केवलज्ञान तक पहुंच जाता है। एक गुरु के पास दो विद्यार्थी पढ़ते थे। उसमें एक विद्यार्थी सौम्य प्रकृति का था और दूसरा उद्धत स्वभाव का। गुरुकुल में रहते हुए दोनों शिष्य गुरु की समस्त प्रकार से सेवा करते थे। जङ्गल में लकड़ी लेने के लिए जाते थे, खाना बनाते थे आदि। एक दिन दोनों शिष्य जङ्गल में लकड़ी लेने के लिए गए थे। प्रकृति सौम्य अङ्गर्षि महात्मा भी दूर जङ्गल में लकड़ी लेने के लिए गये थे। उद्धत विद्यार्थी लकड़ी के भार को ले जाने वाली बुढ़िया से लकड़ी छीनकर गुरु के पास शीघ्र ही पहुँच जाता है और अपने गुरु से कहता है - अङ्गर्षि तो किसी बुढ़िया को पीटकर उसकी लकड़ियाँ छीनकर आ रहा है। गुरु महाराज उसकी बात को सच मानते हैं, इसी कारण अङ्गर्षि के आते ही गुरु महाराज क्रोधित होकर उसे उपालम्भ देते हैं। भूल होने पर उपालम्भ मिले तो भी उसे हम सहन नहीं कर सकते, तो यहाँ तो बिना भूल के उपालम्भ मिलने की घटना थी। तुम होते तो क्या करते? आग-बबूले हो जाते न? किन्तु यह अङ्गर्षि तो सौम्य प्रकृति का

था इसीलिए उसने विचार किया – सम्भव है मेरे द्वारा गुरु महाराज का अविनय हो गया हो। अरे रे! मेरे कारण गुरु महाराज को आर्तध्यान हुआ, क्रोध आया और इन्हीं शुभ विचारों में वह आगे बढ़ता जाता है, अन्तिम सीढ़ी पर चढ़कर समस्त कर्मों को चूर्ण कर क्षण मात्र में ही केवलज्ञान प्राप्त करता है। देखो, यह सौम्य प्रकृति मनुष्य को कहाँ से कहाँ ले जाती है.... मोक्ष तक ले जाती है।

समदृष्टि से सच्ची शान्ति . . . .

जो मनुष्य यह सोचता है, मैं सच्चा हूँ, मैं अच्छा हूँ, वास्तव में वह कभी भी उन्नति के शिखर पर नहीं पहुँच सकता। जीवन में अपूर्व शान्ति प्राप्त करनी हो तो मान–अपमान को समान गिनें। मान से फूलें नहीं और अपमान से कुमलाएं नहीं। स्वर्ण और पत्थर को समान देखने पर ही शान्ति मिलती है। जैसे क्रोध त्याग योग्य है वैसे ही मान भी त्याग योग्य है। क्रोध को कड़वा जहर की उपमा दी गई है।

भामण्डल – आभामण्डल . . . .

भगवान् के पीछे की तरफ जो भामण्डल होता है वह कहाँ से आता है? यह जानते हो? वस्तुतः यह मण्डल गुणों का मण्डल होता है।

समता की साधना....!

सरलता की साधना....!

क्षमा की साधना....!

ज्ञान की साधना....!

इन समस्त साधनाओं मे से एक–एक गुण की आभा उत्पन्न होती है और सभी स्वभाव का एक आभामण्डल तैयार होता है।

ईर्ष्यालु सदा दुःखी . . . .

मनुष्य स्वयं के दुःखों से दुःखित हो यह स्वाभाविक है, किन्तु आज मनुष्य दूसरों के सुखों से दुःखी है। सम्पूर्ण विश्व में यही दुर्गुण व्याप्त है। किसी की बढ़ती हुई समृद्धि को देखकर ईर्ष्यालु के पेट में तेल उंडेलने के समान गड़बड़ मच जाती है।

G.O.K....

एक मनुष्य इंग्लैंड की अस्पताल का निरीक्षण करने के लिए निकला। इस अस्पताल की ऐसी व्यवस्था थी कि प्रत्येक पलंग पर वहाँ जिस प्रकार का बीमार हो उसी प्रकार की सूचना अंकित रहती थी, जैसे – क्षय, टी.बी. आदि। उसने घूमते हुए एक बोर्ड पर G.O.K. लिखा हुआ देखा। उसने सोचा यह भी किसी प्रकार की बीमारी का नाम होगा। उसने डॉक्टर से पूछा – यह किस प्रकार की बीमारी है? डॉक्टर कहता है – GOD ONLY KNOWS अर्थात् केवल भगवान् ही जानता है। हमारे में भी ईर्ष्या आदि स्वभावगत दोषों की ऐसी बीमारी फैली हुई है कि उसका उपचार ईश्वर गुरु भगवान्/ज्ञानी महात्मा ही जानते हैं।

> धर्म करने वाला नीतिमान होना चाहिये। धर्म का पहला लक्षण है-मैत्री अर्थात् परहित चिंता। दूसरा लक्षण है-दूसरों को सुखी देखकर प्रमुदित होना। तीसरा लक्षण है-कारूण्य अर्थात् दूसरों के दुःख को देखकर मन द्रवित हो उठे। चौथा लक्षण है-माध्यस्थ अर्थात् उपेक्षा भाव।

सर्वत्र सत्य ही

श्रावण सुदि १२-१३

प्रिय वाणी . . . .

जिस मनुष्य के स्वभाव में सौम्यता होगी उसकी वाणी भी मीठी एवं मधुर होगी। अनन्त पुण्योदय से हमको जो वाणी मिली है उस वाणी का उपयोग प्रिय बोलने में और भगवान् की स्तुति करने में ही होना चाहिए। जबकि हम उसका उपयोग जैसे-तैसे बोलने में करते हैं अर्थात् पत्थर फेंकने में ही करते हैं। हेमचन्द्रसूरिजी महाराज ने चारित्र की दो प्रकार से व्याख्या की है। १. पाँच महाव्रत और २. अष्ट प्रवचन माता। इसमें भी भाषा समिति पर अधिक जोर दिया गया है, क्योंकि मनुष्य की मति, कुल आदि की पहचान उसकी वाणी से ही होती है। जबकि सामने वाले पर हम तो कटुक वाणी रूप बाण ही बरसाते रहते हैं। तनिक भी सभ्यता नहीं। भगवान् ने केवलज्ञान प्राप्त किया, किसके बल पर? मौन के बल पर ही न? मौन से साधना अत्यन्त बलवती होती है। अतः वाणी सत्य और हितकारी ही बोलनी चाहिए। सच्ची होने पर भी दूसरों की हिंसा करने वाली और अहित करने वाली वाणी नहीं बोलनी चाहिए।

सत्य भी असत्य . . . .

एक तापस था। वह सत्यवादी था और वह गांव के बाहर रहता था। संयोग ऐसा बना कि लूट-पाट करने वाले उस गांव में आए। गांव में रहने वाले लोगों को पहले से ही खबर मिल जाने के कारण समस्त ग्रामवासी अपनी बहुमूल्य चीजें लेकर गांव के बाहर वृक्षों के झुण्ड में घुसकर बैठ गये। लुटेरे आए, गांव को बिल्कुल खाली देखा। उन्होंने विचार किया, गांव के बाहर जो तापस रहता है उससे पूछना चाहिए। वह तापस सत्यवादी होने के कारण सत्य ही कहेगा। लुटेरों ने तापस से

पूछा – उस तापस ने उत्तर दिया – जो जानता है वह बोलता नहीं, जो नहीं जानता है वह बोलता है। अर्थात् आँख जानती है किन्तु बोलती नहीं और जीभ नहीं जानती है किन्तु बोलती है। वह तापस उक्त वाक्यों की पुनरावृत्ति करता रहा। यह सुनकर उन लुटेरे चोरों ने कहा – तुम सत्य बोलो, तुम्हारी सत्यवादी के रूप में प्रसिद्धि है, या असत्य बोलो। हमारा कुछ नहीं बिगड़ेगा, तुम्हारी प्रसिद्धि जिस रूप में है वह समाप्त हो जाएगी। उस तापस ने विचार किया – मै यदि असत्य बोलूंगा तो मेरी प्रसिद्धि धूल में मिल जाएगी। इसीलिए उसने सत्य कह दिया – इन झाड़ों के झुरमुट में लोग बैठे हुए हैं। इस सत्य का यह परिणाम हुआ कि चोरों ने उन सभी को लूट लिया और मार डाला। यह कौशिक नाम का ऋषि सातवीं नरक में गया। महात्मा कहते हैं – ऐसा सत्य मत बोलो जिससे कि किसी की जान चली जाए।

नीति का धन . . . .

जीवन में वाणी की सच्चाई जितनी आवश्यक है उतनी ही न्याय और नीति की आवश्यकता है। नीति की कमाई सत्कार्य की ओर प्रेरित करती है। एक सेठ थे। उनके यहाँ बहुत बड़ा परचूनी का व्यापार चलता था। उस सेठ ने क्या किया? माल की खरीद-बिक्री करने की दृष्टि से तराजू के बाँट उसने अलग-अलग रखे थे। सेठ के दो पुत्र थे। एक का नाम वधिया और दूसरे का नाम घटिया रखा था। इस सेठ को जब माल खरीदना होता तो वह वधिया को आवाज देता – मण का बाँट ला। वधिया अधिक वजन वाला मण का बाँट ले आता और जब देने का होता तो वह घटिया को आवाज देता। वह घटिया कम वजन वाला मण का बाँट लाकर दे देता। इस अनीतिमय व्यापार से वह सेठ बहुत खुश था। उस सेठ ने बड़े लड़के का विवाह किया। बहू घर में आई। उसने घर का सारा रंग ढंग देखा। एक दिन उसने ससुरजी से पूछा – बापू, आप वधिया और घटिया यह कहकर किसको बुलाते हो? अपने घर में ऐसे नाम तो किसी के हैं नहीं। बहू की यह बात सुनकर उस सेठ ने सच्ची बात का

वर्णन उसके सामने कर दिया। बहू धर्मिष्ठ थी। उसने सोचा – इस अनीति के पैसे से ही इस घर से बीमारी पिण्ड नहीं छोड़ती है और पूरा खाने को भी नहीं मिलता है, इसीलिए उसने अपने ससुरजी से कहा – आप न्यायपूर्वक व्यापार करें। अपने घर में अनीति का धन आ रहा है इसीलिए घर में क्लेश ही क्लेश है, शान्ति नहीं है। बहू की बात सेठ के गले उतर गई और उसने नीति से व्यापार करना प्रारम्भ किया। चारों ओर उस सेठ की प्रामाणिकता की प्रशंसा होने लगी। ग्राहक बढ़े और कुछ ही समय के भीतर वह वास्तविक रूप में सेठ बन गया। परिवार भी बढ़ने लगा और सुख ही सुख छा गया। सेठ को यह विश्वास हो गया कि यह बहू सुलक्षणी है। इसके इस घर में कदम रखने से परिवार और धन बढ़ा है, मान-सम्मान भी बढ़ा है। एक समय बहू ने कहा – पिताजी, आप एक सोने की पाँचसेरी बनाओ। उस पर सच्चा सेठ अंकित करो और उसको बाजार के बीच में छोड़ दो, फिर देखो, इस नीतिपूर्ण धन का कमाल! सेठ ने उसी प्रकार किया। उसी समय एक व्यक्ति दौड़ता हुआ उसके पास आया और कहने लगा – हे सेठ! ये आपकी पाँचसेरी बाजार के बीच में पड़ी हुई थी, उसके ऊपर आपका नाम भी लिखा है अतः इसे आप संभालो। दूसरी बार पुनः परीक्षण हेतु सेठ ने उस पाँचसेरी को तालाब में फेंक दी। मच्छ निगल गया। मच्छीमार जाल में उसको पकड़ कर घर ले जाता है और मार देता है। मच्छ के पेट में से वही पाँचसेरी निकलती है। उसके ऊपर का नाम पढ़ता है और वह दौड़कर सेठ के पास आकर कहता है – हे सेठ! यह आपकी पाँचसेरी है, आप इसे वापस लो। देखो, कैसे नीतिपूर्वक कमाया हुआ धन वापस कहीं ना कहीं से अपने स्थान पर आ ही जाता है। सेठ को नीति पूर्वक व्यापार में विश्वास हुआ और वह अत्यन्त सुखी भी हुआ।

मनुष्य कुछ लेकर आता नहीं है और कुछ लेकर जाता नहीं है, केवल पुण्य, पाप को ही साथ ले जाता है।

अन्तर्दर्शन

श्रावण सुदि पूर्णिमा

अक्षय अन्तर्वैभव . . . .

आज मनुष्य सजावट के पीछे लाखों रुपये खर्च कर रहा है किन्तु सन्तप्त दिल वाले किसी भाई को सांत्वना देने के लिए एक कौड़ी भी खर्च करने को तैयार नहीं है। मनुष्य का यह बाहरी वैभव ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उसकी भूख/तृष्णा भी बढ़ती जाती है। उसको स्वयं का जीवन भी अपूर्ण लगता है। जबकि जो मनुष्य स्वयं के अन्तर्वैभव की बढ़ोतरी करता है उसका जीवन बहुत सुखमय बन जाता है। नष्ट होगा इसकी कल्पना भी नहीं होती है। अन्तर्वैभव का सुख ऐसा है कि ज्यों-ज्यों हम दूसरे को सुख प्रदान करेंगे त्यों-त्यों हमारा सुख बढ़ता जाएगा। जबकि बाहरी वैभव का सुख ऐसा कमजोर है कि ज्यों-ज्यों आप खर्च करोगे त्यों-त्यों खत्म होता जाएगा। कभी कदाचित् बढ़ोतरी भी होगी तो भी वह अन्तर्वैभव के समान नहीं। तुम सामने वाले व्यक्ति को जितना अधिक प्रेम दोगे उतनी ही अधिक तुम्हारे में प्रेम की वृद्धि होती चली जाएगी। बाहर के पदार्थों की तुम ज्यों-ज्यों वृद्धि और संचय करते रहोगे त्यों-त्यों तुम अपूर्ण ही बनते जाओगे। जबकि अन्तर्वैभव को ज्यों-ज्यों बांटोगे तुम पूर्ण बनते जाओगे।

अनुकम्पा . . . .

सम्यक्त्व की मुख्य पहचान है अनुकम्पा। अनुकम्पा अर्थात् दया नहीं किन्तु दूसरे के दु:ख दर्द को देखकर मन आकुल-व्याकुल बन जाए और उसका हृदय कम्पित हो जाए उसे अनुकम्पा कहते हैं। अनुकम्पा का स्तर दया से ऊपर है। भगवान् के हृदय में अनुकम्पा ठूंस ठूंस कर भरी हुई होती है। बस, ध्यान में बैठते ही उनके दिमाग में एक ही विचार घूमता

रहता है कि मैं इस विश्व के जीवों को दु:खों से कैसे मुक्त करूं? उनका हित कैसे करूं? बस, यही एक लगन लगी रहती है। इसीलिए तो विश्व के समस्त प्राणियों के वे पूज्य बन गए हैं। धर्म का प्राण करुणा है। जब सङ्गम देव ने भगवान् महावीर को छ:-छ: महीने तक अनेक प्रकार के घोर उपसर्ग किए किन्तु किसी भी दिन भगवान् की आँखों में एक बूंद आँसू भी नहीं आया, किन्तु जब वह सङ्गम हताश होकर वापस जाता है तो भगवान की आँखें करुणा से छलक उठती है। बस, भगवान् को यही एक विचार आता है कि यह बेचारा छ:-छ: महीने तक मेरे संसर्ग में रहा फिर भी यह दुर्गति में जाएगा? भगवान् की कैसी करुणा है! विभिन्न प्रकार के उपसर्ग करने पर भी उसके ऊपर कैसा विलक्षण प्रेम....!

देह की नहीं, देव की पूजा ....

हिंसा करने से मनुष्य दुर्गति में जाता है। मांसाहार करने से, महारम्भ करने से, महापरिग्रह करने से नरक में जाता है। शास्त्र में पन्द्रह कर्मादान का वर्णन आता है जो नरक में ले जाने वाले हैं। कर्मादान किसे कहते हैं? कर्म का आदान/ग्रहण, कर्म बांधने का व्यापार। परिग्रह की इच्छा से ही मनुष्य ऐसे कर्मादानों का आचरण/व्यापार करता है, क्योंकि इच्छा तो आकाश के समान व्यापक है। परिग्रह में कमी न कर सको तो कोई बात नहीं, किन्तु इच्छा का परिमाण तो करो। हमारा शरीर पूर्णत: अशुची से भरा हुआ है। मनुष्य को शौचालय में बैठने की इच्छा होती है क्यों? चाहे जैसा उत्तम से उत्तम भोजन भी इस शरीर रूपी गटर में जाने के बाद कैसा दुर्गन्ध वाला बन जाता है? अरे! हमारे भोजन करने के तत्काल बाद यदि वमन हो जाए तो क्या हम एक क्षण के लिए भी उसको देखते हैं? नहीं, बल्कि वहाँ से भाग खड़े होते हैं। दुनियां में समस्त मशीनें/यन्त्र कच्चे माल में से पक्का माल तैयार करती है। जबकि शरीर रूपी एक मात्र यन्त्र ऐसा है जो पक्के माल को कच्चा बनाकर बाहर फेंकता है और उस माल को देखने के लिए आँख डालने की भी हिम्मत नहीं होती।

उत्तम से उत्तम मिष्ठान्न भी उदर में जाने के साथ ही घृणित पदार्थ के रूप में परिणत हो जाता है। बाहर से दिखाई देने वाले इस सुन्दर शरीर में कितने घृणित पदार्थ भरे हुए हैं। महापुरुष कहते हैं - यह शरीर प्रेम से हाथ फेरने योग्य नहीं, पोषण करने योग्य भी नहीं किन्तु शोषण करने के लिए है। हम रात दिन इसकी पूजा में ही पड़े हुए हैं। जबकि शास्त्रकार कहते हैं - देह की नहीं, देव की/आत्मा की पूजा करो। मनुष्य को समस्त प्रकार का वैभव मिलने पर वह यह मान बैठता है कि मेरा जन्म सफल हुआ। किन्तु, महापुरुष कहते हैं - वह जन्म सफल नहीं क्योंकि धर्माराधन के बिना वह निष्फल है। परमात्मा के रूप-सौन्दर्य के अतिरिक्त जगत् में किसी का अद्‌भुत रूप नहीं है। इस शरीर में से सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्ररूपी तीन रत्न निकालने हैं। जैसे समुद्र में अगाध पानी है वैसे ही इस आत्मा में अखूट खजाना भरा हुआ है।

दो रोग . . . .

भव रोग और भाव रोग ये दोनों मोटे रोग हमें घेरे हुए हैं। हमारे चित्त के परिणाम इतने कलुषित हैं कि राग, द्वेष और मोह के कारण चित्त अत्यन्त व्याकुल बना हुआ है। जब तक ये भाव रोग हैं तब तक भव रोग भी रहेगा। धर्म रूपी जवाहरात खरीदने के लिए गुणों के वैभव की अपेक्षा है। यदि गुण रूपी वैभव हमारे पास नहीं है तो धर्म रूपी जवाहरात भी हम नहीं खरीद सकते।

मनुष्य सर्वदा अपने नाम को अमर बनाने की इच्छा रखता है। नाम को नहीं अपने काम को अमर बनाना सीखो। ऐसा सत्कार्य करो कि तुम्हारा काम अमर बन जाए।

जीवन की सिद्धि धर्मोपार्जन में है, अर्थोपार्जन में नहीं। खाने- पीने का काम तो यह जीव प्रत्येक योनि में करता आया है। इस जीवन में भी उन्ही कार्यों की पुनरावृत्ति होगी तो संसार के फेरे कहाँ से टलेंगे। जब धर्म का महत्त्व समझ में आता है तभी यह जीवन उच्च कोटि का बन जाता है।

लोकप्रियता

भादवा वदि २

धर्म योग्य बनने के लिए चौथा गुण है.... **लोकप्रियता**

धर्म करने वाले मनुष्य को लोकप्रिय होना चाहिए। एक ओर तो वह अनेक प्रकार की तपस्या करता हो और दूसरी तरफ वह कंजूस का काका हो, तो उसकी प्रशंसा होगी या हंसी? जो मनुष्य धर्म करता हो वह किसी भी दिन किसी के प्रति हानिकारी शब्दों का उच्चारण नहीं करे। कदाचित् उच्चारण/बोल भी दे तो वह क्रोधित नहीं हो। लोकप्रिय बनना हो तो निम्नांकित बिन्दुओं पर ध्यान रखना चाहिए।

इहलोक विरुद्ध निन्दा . . . .

इहलोक विरुद्ध और परलोक विरुद्ध कोई भी कार्य मत करो। इहलोक विरुद्ध - जीवन में किसी की भी निन्दा मत करो। दुनिया में बुरी से बुरी वस्तु कहलाती है गरज। स्वार्थ में गधे को भी बाप कहना पड़ता है। उससे भी अधिक घृणित गाली है निन्दा। निन्दा का रस ऐसा अजीब होता है कि मनुष्य घंटो तक सुनता रहता है किन्तु ऊबता नहीं।

निन्दा करना महापाप है . . . .

एक गांव में एक मुनिराज रहते थे। वे मासक्षमण के ऊपर मासक्षमण करते थे। जनता में बहुत प्रसिद्धि थी - कैसे तपस्वी हैं, कैसे त्यागी हैं। ऐसे समय में कोई अन्य साधु भी घूमते-घूमते वहाँ आ गये। चौमासे का समय निकट था इसीलिए उसी गांव में चौमासा करने के लिए रहे। ये महाराज उपाश्रय के ऊपर के हिस्से में रहते हैं। ये महाराज प्रतिदिन वहोरने के लिए सीढ़ियों से नीचे उतरते हैं और उनके मन में एक ही विचार घूमता रहता है - अरे, कहाँ ये तपस्वी और कहाँ मैं! मैं कैसा आचार में शिथिल हूँ? उत्तम कुल में जन्म लेने के बाद भी मैं तप-त्याग

नहीं कर सकता। इस प्रकार वे प्रतिदिन स्वयं की आत्मनिन्दा करते हैं। जबकि प्रतिदिन तीन-तीन बार वहोरने के लिए इस महाराज को देखकर पहले तपस्वी महाराज विचार करते हैं - अरे, यह तो जीभ के पराधीन है। धिक्कार है इस पेटू को! इस प्रकार उसकी निन्दा करते रहते हैं। गांव के श्रावक लोग जब भी उनके पास आते हैं? तो वह तपस्वी महाराज उसी की निन्दा चर्चा करते हैं। चौमासा पूरा हुआ। यह पाटलीपुत्र/पटना की बात है। वहाँ कोई केवली भगवन् पधारते हैं। ग्रामवासी उनकी देशना सुनने के लिए जाते हैं। देशना के बाद वे गुरुमहाराज से पूछते हैं- भगवन्! इस समय में चौमासे में हमारे यहाँ दो साधु महाराज रहे। उनमें एक तपस्वी था और दूसरा खाऊपीर, इन दोनों की क्या गति होगी?

यह सुनकर केवली भगवन् कहते हैं - सुनो, जो तपस्वी मुनि थे वे मरकर दुर्गति में जाएंगे और संसार में भ्रमण करेंगे। जिसको आप लोग खाऊपीर कहते हो वह साधु कुछ ही काल के पश्चात् मोक्ष जाएंगे। यह सुनकर ग्रामवासी आश्चर्य चकित रह गये। केवलज्ञानी कहते हैं - जो तपस्वी मुनि थे वे प्रतिक्षण निन्दा ही किया करते थे जबकि वह खाऊपीर साधु स्वयं की आत्मनिन्दा किया करता था। निन्दा करने से और अहंकार आने से हजारों वर्ष की तपस्या समाप्त हो जाती है। बाहुबली को केवलज्ञान प्राप्ति में केवल अहंकार ही बाधक था, था न? नहीं तो बाहुबली की कैसी उग्र तपस्या थी, किन्तु जब अहंकार नष्ट हुआ तो तत्काल ही उन्हे केवलज्ञान मिल गया। केवल नम्रता के विचार ही मनुष्य को कहाँ से कहाँ ले जाते हैं? गुणवान की निन्दा करना यह तो महा भयंकर पाप है।

सरल हृदय की प्रार्थना . . . .

भगवान् के पास में सरल हृदय की प्रार्थना शीघ्र ही पहुँचती है। एक मन्दिर में धर्मगुरु प्रार्थना करा रहे थे। श्रोतागण अच्छी तरह से उस प्रार्थना को ध्यानपूर्वक सुन रहे थे और स्वीकार कर रहे थे। उनमें एक छोटा सा बालक भी था। वह भी अपने हाथों को नचा-नचा कर प्रार्थना

कर रहा था। धर्मगुरु ने उससे पूछा - अरे, तू क्या कर रहा है? क्या तुझे प्रार्थना करनी आती है? वह लड़का कहता है - देखिये, यह पूरी प्रार्थना स्वर और व्यंजन अथवा बारहखड़ी से ही बनी हुई है। मैं पूरी बारहखड़ी कह देता हूँ और कहता हूँ - भगवान्! इस बारहखड़ी में से आप अपनी प्रार्थना बना लेना। यह सुनकर धर्मगुरु हंस पड़े। कैसा सरल हृदय है!

क्रमशः

हमारे पास किसी प्रकार की गारन्टी नहीं है कि हम मृत्यु के बाद सुखी होंगे ही। हमारी चौबीस घण्टों की प्रवृत्ति क्या है? खाना-पीना, पहनना, घूमना-फिरना बस यही विचार दिमाग में घूमते रहते हैं। क्या अन्य विचार भी करते हैं? यहाँ मस्ती से खाते हैं किन्तु कुत्ते की योनि में जाने पर एक रोटी के टुकड़े के लिए भी पत्थर खाने पड़ेंगे। कवि कालिदास कहते हैं - तुम थोड़े से टुकड़ों के लिए अपना बहुत कुछ खो रहे हो।

परम की यात्रा

भादवा वदि ५

बहिरात्मा ....

आत्मा तीन प्रकार की है - बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा। जिसकी आत्मा बाहर है अर्थात् जिसने अपनी आत्मा को पहचाना नहीं है, केवल जो 'मैं' से ही प्रसन्न हो, धन ही मानो जिसकी आत्मा हो, कंचन, कामिनी, कुटुम्ब, शरीर और कीर्त्ति ही जिसकी आत्मा हो उसे बहिरात्मा कहते हैं। उसका सम्बन्ध केवल बाह्य पदार्थों से होता है। शरीर की सजावट में ही जिसकी सारी जिन्दगी व्यतीत हो जाती हो, तनिक भी वजन घटने पर वह तत्काल ही कहेगा मैं सूखकर कांटा हो गया हूँ अर्थात् मैं हूँ तब तक यह शरीर और आत्मा है, वह सम्पत्ति, पत्नी आदि को ही मैं के रूप में स्वीकार करता है। अधिकांशतः जगत् के जीव बहिरात्म दशा में ही जीते हैं। बाहर के पदार्थों में बढ़ोतरी अर्थात् अत्यन्त प्रसन्नता और उन पदार्थों में घटोतरी होने पर चिल्लाकर वह रोने लग जाता है। क्योंकि 'मैं' को ही वह आत्मा मानता है। एक सेठ थे। उनका बहुत बड़ा व्यापार था। दस लाख का मुनाफा होने वाला था। रात में ही खबर लगी कि भाव घट गये हैं। तब भी पाँच लाख का तो फायदा होने वाला था, फिर भी उस सेठ को आघात लगा और वह एकदम जोर से पुकारता हुआ चिल्लाने लगा कि, मैं तो बरबाद हो गया-बरबाद हो गया। आसपास के लोग इकट्ठे हो गये। दरवाजा खटखटाया। लोगों ने सेठानी से पूछा - सेठ जोर-जोर से क्यों चिल्ला रहे हैं। सेठानी कहती है - इनको दस लाख का मुनाफा होने वाला था, इसके स्थान पर पाँच लाख का हुआ इसीलिए वे पागल होकर चिल्ला रहे हैं। विचार करिए - सेठ की आत्मा कहाँ थी? धन में ही न।

अन्तरात्मा . . . .

जो मनुष्य अन्तरात्मा वाला होता है उसे तुरन्त ही विचार आएगा कि मेरे में सद्गुण कितने हैं, दुर्गुण कितने हैं? और इन दुर्गुणों को छोड़ने के लिए तथा सद्गुणों को प्राप्त करने के लिए वह निरन्तर भागदौड़ करता है।

मेरा कहाँ देता हूँ ?. . . .

एक मनुष्य दान देता था। वह सर्वदा मुख नीचा करके दान देता था। एक आदमी ने उससे पूछा - भाई! आप नीचा मुख रखकर दान क्यों देते हो? दान लेने वाले को शर्म आनी चाहिए न कि देने वाले को, उस पर उसने प्रश्नकर्ता को कहा - अरे भाई! जो मैं दान देता हूँ वह मेरा नहीं है, भगवान् का दिया हुआ है, फिर भी लोग मेरा गुणगान किया करते हैं। भगवान् को कोई याद नहीं करता है इसीलिए मुझे लज्जा आती है। जो मैं दान देता हूँ वह तो भगवान् ने मुझे दिया है तभी तो मैं दे पा रहा हूँ?

बस, प्रभु ही है . . . .

एक महान् सद्गुरु थे। सर्वदा स्वयं में मस्त रहते थे। किसी भी दिन मान-सम्मान का विचार नहीं करते थे। उनके तो मन मन्दिर में केवल भगवान् ही थे। उनके जीवन को अहंकार छू भी नहीं सका था। केवल परमात्मा की भक्ति यही उनका काम था। अन्त में भक्ति के प्रभाव से उनमें अनेक लब्धियाँ प्रकट हुईं। उनके बल पर वे नये-नये कार्य करने लगे। देवों में भी उनकी प्रसिद्धि फैली। उनके दर्शन के लिए देव आते, दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हो जाते। देवता ने उनको वरदान मांगने के लिए कहा - जो चाहिए सो मांग लो। क्योंकि, देवदर्शन कभी भी निष्फल नहीं जाता। वह सन्त कहता है - मुझे तो मेरे परमात्मा मिल गये, बस, मुझे अन्य कुछ नहीं चाहिए।

विपत्तिः न सन्तु शश्वत् ....

पाँचों पाण्डवों की माता कुन्ती ने क्या मांगा था खबर है? कुन्ती ने देव के पास से यही याचना की थी, मुझे सदा विपत्ति में रखना। क्योंकि विपत्ति में रहूंगी तभी मैं भगवान् को याद कर सकूंगी। देव मिलने पर आप उससे सम्पत्ति मागेंगे या विपत्ति?

पवित्र छाया ....

देव ने कहा – मैं आपके भीतर ऐसी चमत्कार शक्ति भर दूंगा, जिससे की लोगों में आपकी अत्यधिक प्रसिद्धि होगी। यह सुनकर सन्त कहता है – मुझे ऐसी प्रसिद्धि नहीं चाहिए, क्योंकि उस प्रकार की प्रसिद्धि से लोग मेरे पीछे पड़ेंगे और मैं भगवान् को भूल जाऊँगा। इसीलिए मुझे इस प्रकार की शक्ति की आवश्यकता नहीं है। मेरे हाथ से जगत् का अत्यधिक कल्याण हो और मुझे खबर भी नहीं पड़े ऐसी कोई चमत्कारिक शक्ति आप दे सकते हों तो मुझे दो। क्योंकि, मुझे यदि ऐसा आभास हो जाए कि मैं चमत्कार कर सकता हूँ तो फिर उस दशा में मेरे भीतर अहंकार भी आ जाएगा, तो.... वह देव तथास्तु कह कर चला गया। वह सन्त जब भी बाहर निकलता उस समय उसकी परछाया में कोई भी मनुष्य आ जाता तो वह रोगी भी निरोगी हो जाता, दुःखी भी श्रीमन्त बन जाता, अन्धा भी दृष्टि वाला बन जाता। इस प्रकार उनकी परछाया के भीतर जो भी आता वह मालामाल हो जाता। लोग उनको पवित्रछाया के नाम से पहचानने लगे। जब मनुष्य की अन्तरात्मा की ओर दृष्टि जाती है तब उसे अपनी प्रख्याति अच्छी नहीं लगती, उसे तो भगवान् की प्रसिद्धि ही अच्छी लगती है।

परमात्मा ....

जब मनुष्य इस प्रकार अन्तर्मुखी बन जाता है तब उसका प्रभु के साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है और जब यह सम्बन्ध उत्कृष्ट कोटि का बन जाता है तो उसकी आत्मा परमात्मा बन जाती है। वस्तुतः आत्मा परमात्मा

ही है, किन्तु उसके सच्चे अर्थ को हम समझ नहीं सके हैं। भीतर में रहे हुए भगवान् को हम पहचान नहीं सके हैं। केवल मन्दिरों और तीर्थों में उनकी खोज करने के लिए निकलते हैं। प्रभु की भक्ति में मस्त मनुष्य को किसी प्रकार का भय नहीं होता।

वो ही आस करे ....

अकबर राजा के राजदरबार में अनेक कवि थे उनमें एक गङ्ग नाम का कवि भी था। वह गङ्ग कवि प्रतिदिन भगवान् की स्तुति करता था और किसी साधु-सन्त की स्तुति भी करता था किन्तु कभी भी किसी भी राजा महाराजा की स्तुति नहीं करता था। दूसरे सब कविगण अकबर को प्रसन्न करने के लिए उनकी स्तुति करते थे। एक दिन ईर्ष्या से प्रेरित होकर कितने ही कवियों ने मिलकर अकबर राजा से कहा - हे राजन्! यह गङ्ग कवि किसी भी दिन आपकी स्तुति (प्रशंसा) नहीं करता है, आप चाहें तो परीक्षा कर सकते हैं। अकबर राजा ने परीक्षा के लिए **आस करो अकबर की** इस समस्या को पूर्ति के लिए राजसभा में रखा। विभिन्न कवियों ने अपनी-अपनी दृष्टि से नवीन-नवीन पंक्तियां बनाकर इस समस्या की पूर्ति की। राजा ने गङ्ग कवि को भी कहा - आप पूर्ति कीजिए। गङ्ग ने कहा - कल करूँगा। दूसरे दिन राजसभा पूर्ण रूप से भरी हुई थी। गङ्ग कवि पूर्ति करता हुआ कहता है - **जिसको हरि में विश्वास नहीं वो ही आस करे अकब्बर की।** गङ्ग में प्रभु के प्रति कैसी भक्ति होगी कि वह अकबर बादशाह जैसे को भी उक्त पंक्ति कह सका। जब जीवन में सद्गुण प्रकट होते हैं तभी आत्मा की वास्तविक पहचान होती है।

निन्दनीय प्रवृत्ति का त्याग ....

मनुष्य को लोकप्रिय बनने के लिए इसलोक और परलोक के विरुद्ध किसी प्रकार का आचरण नहीं करना चाहिए, सरल स्वभावी बनना चाहिए। शक्ति होते हुए भी दुःखी व्यक्तियों की जो पाईभर

सहायता नहीं करता है वह लोगों में तिरस्कृत होता है। उसे किसी प्रकार का व्यसन नहीं होना चाहिए। उसे शराब का अथवा निम्नकोटि का व्यापार नहीं करना चाहिए। जो मनुष्य एक तरफ धर्म करता हो और दूसरी तरफ मटके का धंधा करता हो और उसके मुनाफे में से धर्म कार्य में पाँच-पच्चीस हजार खर्च कर देता हो तो वह और उसका धर्म दोनों ही तिरस्कार के पात्र बनते हैं।

लोकप्रिय

भादवा वदि ६

धर्मार्थी श्रावकों का चौथा गुण है - **लोकप्रिय।**

(भादवा वदि २ के दिन भी इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला गया था।)

सम्पूर्ण विश्व के लोगों की यह मनोकामना है कि मैं समस्त लोगों का प्रिय कैसे बनूं? जिसको लोकप्रिय बनना हो उसको लोकविरुद्ध किसी प्रकार का कार्य नहीं करना चाहिए। लोकप्रिय बनने के लिए वाणी पर संयम रखना अनिवार्य/अत्यावश्यक है। वाणी व्यर्थ नहीं जानी चाहिए, यह उसकी प्रथम साधना है। आज तो बहुतायत से वाणी का अपव्यय होता है। एक कहावत है- **बहुत बोलता है वह झूठा और बहुत खाता है वह रूखा।** जो मनुष्य सीमा से अधिक बहुत बोलता रहता है उसके बोलने में सत्य का अंश बहुत कम रहता है और जो बहुत खाता है उसके खाने में रस नहीं रहता है। सीमित मात्रा में ही भोजन को खाने में मजा आता है। वाणी रूपी धन का जैसे-तैसे अपव्यय करने से वह यहीं समाप्त हो जाती है। तीर्थंकर परमात्मा भी पहले वाणीधन का संचय करते हैं और बाद में ही देशना देते हैं। यदि केवलज्ञान के पूर्व ही देशना दें तो वाणीधन की शक्ति भी समाप्त/खर्च हो जाए। मुनि शब्द से ही मौन शब्द बना है। मुनि की समस्त प्रवृत्ति मौन से ही चलती है। वचनगुप्ति और भाषा-समिति इन दोनों का स्वतन्त्र निर्माण किस लिए? वचनगुप्ति अर्थात् सम्भव हो वहाँ तक बोलना ही नहीं है और यदि कदाचित् बोलने की आवश्यकता पड़े तो भाषासमिति अर्थात् उपयोग पूर्वक बोलें। संसार में समग्र क्लेशों का मूल वाणी का दुरुपयोग ही है न?

चार प्रकार के घड़े ....

चार प्रकार के घड़े होते हैं। पहला घड़ा ऐसा होता है जो अमृत से भरा हुआ होता है और उसका ढक्कन भी अमृत से भरा हुआ होता है।

दूसरा घड़ा ऐसा होता है कि वह अमृत से भरा हुआ तो होता है किन्तु उसका ढक्कन विषमय होता है। तीसरे प्रकार का घड़ा जहर से भरा हुआ होता है किन्तु उसका ढक्कन अमृत युक्त होता है। चौथे प्रकार का घड़ा जहर से भरा हुआ तो होता ही है तथा उसका ढक्कन भी जहर वाला होता है। घड़ों के भेंदो के अनुसार ही मनुष्य भी चार प्रकार के होते हैं-

१. उत्तमोत्तम - जिनके हृदय में सदा अमृत भरा रहता है और जिनकी वाणी से भी सर्वदा अमृत बरसता रहता है। उसे मनुष्य सन्त पुरुष कहते हैं।

२. उत्तम - हृदय तो अमृतमय होता है किन्तु वाणी कड़वी होती है। जैसे - पिता और पुत्र। पिता के हृदय में अमृत भरा हुआ होता है किन्तु पुत्र को शिक्षा देने के लिए कटु वाणी का भी प्रयोग करता है।

३. अधम - हृदय में जहर भरा हुआ होता है और वाणी में अमृत होता है। अधिकांशतः मनुष्य इसी कोटि में आते हैं। ऐसे मनुष्यों से संभलकर ही रहना आवश्यक है। मनुष्य क्रोधी हो, लोभी हो, अभिमानी हो तो स्पष्ट हो जाता है, किन्तु मायावी मनुष्य की तो खबर ही नहीं पड़ती।

४. अधमाधम - इस कोटि के मनुष्य के हृदय और वाणी दोनों में ही जहर भरा हुआ होता है। दुर्जन मनुष्य हलाहल जहर से भरे हुए होते हैं।

सच्चा धर्मी ही लोकप्रिय बनता है। जगत को दान के द्वारा वश में किया जा सकता है किन्तु श्रुत और शील की मूल कसौटी तो विनय ही है।

विनय ....

काशी में एक धुरन्धर विद्वान् थे। शास्त्रों का परावर्तन करते हुए उनके हृदय में एक सन्देह उत्पन्न हुआ। उस शंका का समाधान करने के लिए बहुत प्रयत्न किया किन्तु समाधान न हो सका। उनको सूचना मिली की इसी नगरी में एक ब्राह्मण है और शास्त्रों के सतत अभ्यासी हैं। सम्भव है वे मेरी शंका का समाधान कर सकें। एक महाविद्वान् सामान्य ब्राह्मण

के पास पूछने के लिए जाए यह सम्भव नहीं होता है, किन्तु असाधारण मनोबल रखकर वे पूछने के लिए निकलते हैं। मन में चिन्तन चल रहा है। वे प्रौढ़ विद्वान् उस ब्राह्मण के घर पहुँचते हैं। उस समय वह ब्राह्मण अपने काम में व्यस्त था। बाहर से झाँकने पर और उस ब्राह्मण पर दृष्टि पड़ने मात्र से ही इस दिग्गज विद्वान् की शंका का समाधान हो गया। इसी कारण उस ब्राह्मण से बिना मिले ही अपने घर लौट आते हैं। कुछ दिनों बाद ही गुरु पूर्णिमा का दिन आता है। शिष्य समुदाय के साथ हाथ में आरती लेकर वह प्रौढ़ विद्वान् उस ब्राह्मण के घर पहुँचते हैं। उक्त महाविद्वान को अपने द्वार पर देखते ही वह ब्राह्मण तो दिङ्मूढ़ सा हो जाता है। काशी का महान् पण्डित उसके घर पर आयें, वह पागल सा हो जाता है। महाविद्वान् उस ब्राह्मण से कहता है - आप बैठिए, मुझे आरती उतारनी है। ब्राह्मण आश्चर्यचकित होकर पूछता है - यह सब क्या है? मेरे जैसे सामान्य ब्राह्मण की आप आरती उतारें? वह महापण्डित उसको बिठाकर सारी बात बतलाते हुए कहते हैं - आपके दर्शन मात्र से मेरी शंका का समाधान हो गया इसी कारण आप मेरे गुरु हैं। इस प्रकार का सर्वोच्च विनय जीवन में हो तो विद्वान् और महान् बना जा सकता है। विनय, यह सामान्य गुण नहीं है। शास्त्र का मूल ही विनय है। विनय/नम्रता से ही मनुष्य लोकप्रिय बनता है।

चक्रवर्ती की समृद्धि किस प्रकार की है, जानते हो? ८४ लाख घोड़े, ८४ लाख हाथी, ९६ करोड़ सैनिक दल और १६ हजार देवता जिसकी सेवा में हाजिर रहते हैं। वह असीम बल का धारक होता है। एक अवसर्पिणी से उत्सर्पिणी के मध्य में बारह चक्रवर्ती होते हैं।

पू. गुरुदेवमुनिराजश्री-भुवनविजयान्तेवासी-
मु. श्री जंबूविजयजीम. संशोधित-संपादित ग्रन्थो

ग्रन्थ	प्रकाशक
द्वादशारनयचक्र भा० १-२-३	जैनआत्मानन्दसभा, भावनगर
आचारांगसूत्र मूलमात्र	श्री महावीरजैन विद्यालय, मुंबइ-४०००३६
आचारांगसूत्रं सूत्रकृतांगसूत्रं च (सटीक)	मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा.लि., दिल्ही-११०००७
ठाणांगसुत्तं समवायांगसुत्तं च (सटीक)	मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा.लि., दिल्ही-११०००७
आचारांगसूत्र (शीलांकाचार्यकृतवृत्तियुक्त) (प्रथम श्रुतस्कंध के प्रथम चार अध्ययन पर्यंत)	श्री सिद्धिभुवनमनोहर जैन ट्रस्ट अमदावाद
सूत्रकृतांगसूत्र मूलमात्र	श्री महावीरजैन विद्यालय, मुंबइ
स्थानांग तथा **समवायांगसूत्र** मूलमात्र	श्री महावीरजैन विद्यालय, मुंबइ
ज्ञाताधर्मकथासूत्र मूलमात्र	श्री महावीरजैन विद्यालय, मुंबइ
अनुयोगद्वारसूत्र चूर्णि, हारिभद्री वृत्ति तथा मलधारिहेमचन्द्रसूरिविरचितवृत्ति सहित भा० १-२	श्री महावीरजैन विद्यालय, मुंबइ
स्थानाङ्गसूत्र अभयदेवसूरिविरचितवृत्ति सहित भा० १-२-३	श्री महावीरजैन विद्यालय, मुंबइ
समवायाङ्गसूत्र अभयदेवसूरिविरचितवृत्ति सहित	श्री महावीरजैन विद्यालय, मुंबइ
द्रव्यालङ्कार स्वोपज्ञटीकासहित	लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अमदावाद
पञ्चसूत्रकम् (हारिभद्री टीकोपेतम्)	बी.एल. इन्स्टीट्यूट ऑफ इन्डोलोजी, दिल्ही
न्यायप्रवेशक हरिभद्रसूरिविरचितवृत्ति तथा पार्श्वदेवगणिविरचितपञ्जिका सहित	श्री सिद्धिभुवनमनोहर जैन ट्रस्ट अमदावाद
सर्वसिद्धान्तप्रवेशक	
योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्तिसहित भा० १-२-३	जैन साहित्यविकासमंडल, मुंबइ

पाटणना जुदा जुदा भंडारोना हस्तलिखित ग्रंथोनुं सूचिपत्र भा० १-२-३-४	शारदाबेन चिमनलाल एज्युकेशनल रिसर्च सेन्टर, अमदावाद
जेसलमेरना भंडारनुं सूचिपत्र	मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा.लि., दिल्ही-११०००७
धर्मबिन्दु (कर्ता-हरिभद्रसूरि म०) मुनिचन्द्रसूरिविरचितटीकासहित	जिनशासन आराधना ट्रस्ट, पाटण, उत्तर गुजरात
सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम्-अकारादिक्रमसह	श्री सिद्धिभुवनमनोहर जैन ट्रस्ट अमदावाद
सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन-लघुवृत्ति (प्रथम आवृत्ति)	श्रीहेमचंद्राचार्य जैन ज्ञानमंदिर, पाटण
सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन-लघुवृत्ति (द्वितीय आवृत्ति)	श्री सिद्धिभुवनमनोहर जैन ट्रस्ट अमदावाद
सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन रहस्यवृत्ति	
वैशेषिकसूत्र-चन्द्रानन्दविरचितवृत्तिसहित	प्राच्यविद्यामन्दिर, वडोदरा
स्थानांगसूत्र सटीक भा० १-२-३ (द्वितीय आवृत्ति)	,, ,,
योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्तिसहित भा०१-२-३ (द्वितीय आवृत्ति)	श्री सिद्धिभुवनमनोहर जैन ट्रस्ट अमदावाद
उपदेशमाला हेयोपादेयावृत्तिसहिता	श्री सिद्धिभुवनमनोहर जैन ट्रस्ट अमदावाद
सूरिमंत्रकल्पसमुच्चय भाग-१,२	जैनसाहित्य विकास मंडल, मुंबई
स्त्रीनिर्वाणकेवलीभुक्ति प्रकरणे	जैन आत्मानंदसभा, भावनगर
श्रीसिद्धिभुवन प्राचीन स्तवन संग्रह	हर्षा प्रिन्टरी, मुंबई
गुरुभक्ति गहुंलीसंग्रह	-
गुरुवाणी (पूज्यश्री के प्रवचनों का संग्रह-गुजराती) **भाग १,२,३,४**	श्री सिद्धिभुवनमनोहर जैन ट्रस्ट अमदावाद
गुरुवाणी (पूज्यश्री के प्रवचनों का संग्रह-हिंदी) **भाग १,२,३,४**	श्री सिद्धिभुवनमनोहर जैन ट्रस्ट अमदावाद
हिमालयनी पदयात्रा (गुजराति एवं हिंदी)	श्री सिद्धिभुवनमनोहर जैन ट्रस्ट अमदावाद